।।ओ३म्।।

पाक्षिक
परोपकारी

• वर्ष ६० • अंक १३ • मूल्य ₹१५ महर्षि दयानन्द की स्थानापन्न परोपकारिणी सभा का मुखपत्र • जुलाई (प्रथम) २०१८

महर्षि दयानन्द सरस्वती

परोपकारिणी सभा के तत्त्वावधान में आयोजित आर्यवीरांगना व्यायाम प्रशिक्षण एवं चरित्र निर्माण शिविर (दिनांक ५-१२ जून २०१८)

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ६० अंक : १३

दयानन्दाब्द: १९४

विक्रम संवत्: आषाढ़ कृष्ण २०७५

कलि संवत्: ५११९

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११९

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.
त्रिवार्षिक-५८० रु.
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

जुलाई प्रथम २०१८

अनुक्रम

०१. मैं हिन्दू क्यों हूँ?	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-९	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१३
०४. 'मनु' के अनुपलब्ध श्लोक	आ. उदयवीर शास्त्री	१७
०५. प्राणोपासना-९	तपेन्द्र वेदालङ्कार	२२
०६. समीक्षा- संकल्प पाठ का....	शिवनारायण उपाध्याय	२६
०७. सोशल मीडिया की सकारात्मक....	अखिलेश आर्येन्दु	२८
०८. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		३२
०९. शङ्का समाधान- २८	डॉ. वेदपाल	३३
१०. संस्था-समाचार		३५
११. मन	प्रकाश चौधरी	३८
१२. परमात्मा व मूर्तियों का स्वरूप	ओमप्रकाश गुप्ता	४०
१३. आर्यजगत् के समाचार		४२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

मैं हिन्दू क्यों हूँ?

यह विषय विगत शताब्दी से ही ज्वलंत और चिंतनीय रहा है, जबकि इसे विवादों के घेरे में नहीं होना चाहिए था, लेकिन दुर्भाग्य से यह कथन वैचारिक झंझावातों के मध्य विमर्श का हेतु बना और स्वतंत्रता के बाद तो यह **हिन्दू** शब्द ही आलोचना, विभ्रम, अतार्किकता, अंधविश्वास, साम्प्रदायिकता इत्यादि के तर्क-वितर्क और हठधर्मिता का पर्यायवाची बना रहा। अभी पिछले दिनों अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक एवं कांग्रेस के केरल से सांसद शशी थरूर की पुस्तक **"Why I am a Hindu?"** (मैं हिन्दू क्यों हूँ?) प्रकाशित हुई है।

यह तो सर्वविदित ही है कि शशी थरूर किस विचारधारा के साहित्यकार हैं। पुस्तक के अन्तर्गत उन्होंने **हिन्दुइज़्म** या हिन्दुत्व को विश्लेषित किया है जिसमें प्राचीन वैदिक साहित्य एवं विगत शती के अनेक हिन्दू महापुरुषों के आधार पर उन्होंने हिन्दू धर्म की व्याख्या की है। उन्होंने हिन्दू धर्म के विषय में 19वीं शताब्दी के पुनर्जागरण आन्दोलन में राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, नारायण गुरु इत्यादि के नामों के साथ-साथ इनके द्वारा प्रवर्तित आंदोलनों मुख्यतः - ब्राह्मसमाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन इत्यादि के द्वारा धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों का संक्षेप एवं विस्तार से वर्णन किया है। उक्त पुस्तक के दूसरे भाग में हिन्दू धर्म की राजनैतिक विचारधारा के रूप में तथाकथित रूप से आर.एस.एस. और भारतीय जनता पार्टी, वीर दामोदर सावरकर, हिन्दू महासभा के साथ-साथ डॉ. केशव हेडगेवार और गुरु गोलवलकर जी के विचारों को विस्तार से विश्लेषित किया गया है। उन्होंने हिन्दू धार्मिक आंदोलनों के द्वारा जारी विभिन्न आंदोलनों यथा-गोरक्षा आंदोलन, रामजन्मभूमि आंदोलन इत्यादि विभिन्न आंदोलनों की एक विशेष दृष्टि से, जिसके वे प्रतिनिधि हैं, आलोचना करते हुए टिप्पणियाँ दी हैं। चूँकि वे केरल से सांसद हैं, वहाँ मुसलमान-ईसाई आबादी काफी है और गोमांस भी वहाँ खाया जाता है, अतः वे स्वाभाविक रूप से इस संबन्ध में विश्लेषक की स्वतंत्रता का उनके पक्ष में इस्तेमाल करते हैं।

ध्यातव्य है कि वर्तमान में जिसे हिन्दू धर्म कहा गया वह वस्तुतः वेदों से उत्पन्न सार्वभौम धर्म के रूप में विख्यात एक ऐसी जीवनपद्धति बताई गई है जिसमें सिद्धान्ततः किसी भी प्रकार का पूर्वाग्रह और मताग्रह नहीं है। यह आश्चर्य की बात है कि विश्व में केवल यही ऐसा धर्म है और ऐसे इसके अनुयायी हैं कि जो वेद को मानते हैं, वे भी हिन्दू हैं और जो वेद को नहीं मानते वे भी हिन्दू हैं। ईश्वर, यज्ञ, आत्मा, पुनर्जन्म, कर्मकाण्ड इत्यादि को न मानने वाले भी हिन्दू धर्म को स्वीकार करते हैं, और वह इसलिए कि हिन्दू धर्म में अनेक सम्प्रदाय, उपासना-पद्धतियाँ, कर्मकाण्ड, विभिन्न प्रथाएँ इत्यादि मान्यतापूर्वक उपलब्ध हैं। इसलिए इसे ईसाई मत एवं मुस्लिम मत के अनुसार केवल एकांगी दृष्टिकोण से परिभाषित नहीं किया जा सकता। हिन्दू धर्म की गतिशीलता और वैचारिक उदारता ही इसकी विशेषता है जो बहुधा स्वेच्छाचार तक पहुँच जाती है। इस विषय में एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के १५वें संस्करण में **हिन्दुत्व** को परिभाषित करते हुए लिखा गया है- "हिन्दुओं (जो मूलतः सिंधु नदी के क्षेत्र के लोगों की संज्ञा थी) की सभ्यता, जो लगभग २००० वर्षों में वेदों से विकसित हुई। .....इसमें परस्पर विपरीत मत तथा तत्त्व निहित हैं। यह एक विराट् अविच्छिन्न समग्र का अत्यंत जटिल संपुंजन है। हिन्दुत्व में समस्त जीवन का समावेश होता है। इसीलिए इसके धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक तथा कलात्मक पक्ष हैं। एक धर्म मत के रूप में हिन्दुत्व अत्यंत वैविध्यमय दर्शन-पंथों तथा सिद्धान्तों का संघटन और प्रसार है। उसके विविध सम्प्रदाय, पंथ एवं जीवन-शैलियाँ हैं। सिद्धान्ततः हिन्दुत्व समस्त विश्वासों, श्रद्धारूपों और उपासना-रूपों को समाविष्ट करता है। वह किसी की भी वर्जना या निषेध नहीं करता। वह दिव्य सत्ता की अत्यंत वैविध्यपूर्ण अभिव्यक्तियाँ मानकर सबका आदर करता है और प्रत्येक अभिव्यक्ति में, प्रत्येक जीवन-रूप में दिव्यता का वास मानता-देखता है। इसीलिए

सिद्धांततः वह सहिष्णु है और सबको इच्छानुसार, स्वभावानुसार, रुचि-अनुसार कोई भी पंथ तथा साधना-रूप चुनने की पूरी अनुमति देता है और सबको इसके लिए स्वतंत्र छोड़ देता है कि वे जिस पंथ और पूजापद्धति को सर्वोत्तम मानें, उसे अपनायें। अन्य देवताओं और पूजारूपों को, वे उसे कितने भी अपरिचित या अनजाने लगें, हिन्दू अपर्याप्त तो मान सकता है, असत्य या आपत्तिजनक नहीं। हिन्दू मानता है कि उच्चतम दिव्य शक्तियों में और विविध देवताओं में परस्पर कोई विरोध नहीं है, बल्कि पूरकता है और सभी देवता मिलकर विश्व-कल्याण तथा मानव-कल्याण के लिए प्रस्तुत रहते हैं। इसीलिए हिन्दुओं में धर्म का मर्म किसी देवता विशेष के ऊपर निर्भर नहीं है। देव एक ही है या अनेक हैं, यह निष्कर्ष हिन्दुत्व के अपने प्रवाह के लिए मौलिक शर्त नहीं है, क्योंकि धार्मिक सत्य तो शाब्दिक निरूपणों से परे है। वह किसी भी पंथ-पदावली द्वारा पूर्णतः निरूपणीय नहीं है। वह केवल साक्षात्कार के योग्य है। इसी कारण हिन्दुत्व सभ्यता भी है और धर्मपंथों का एक विराट् संपुंजन भी। उसका कोई एक संस्थापक नहीं है, कोई एक केन्द्रीय 'अथॉरिटी' (अधिकारी-संस्था) नहीं है, विविध पंथों के बीच कोई ऊँच-नीच की क्रम-व्यवस्था निर्धारित नहीं है और कोई एक केन्द्रीय संगठन नहीं है। इसीलिए हिन्दुत्व की विशिष्ट परिभाषा का प्रत्येक प्रयास किसी न किसी रूप में अपर्याप्त सिद्ध हुआ है और होता है, क्योंकि हिन्दुत्व के सर्वोत्तम भारतीय विद्वानों ने, जिनमें स्वयं सर्वोत्तम हिन्दू विद्वान् भी हैं (और अन्य भी), एक ही अखंड सत्ता के विविध पक्षों की सत्ता पर सदा बल दिया है।''

उल्लेखनीय है कि ११ दिसम्बर १९९५ को भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने मनोहर जोशी बनाम नितिन भाऊराव पाटिल तथा अन्य के प्रकरण (सिविल अपील संख्या ४९७३, १९९३) के विषय में हिन्दुत्व को परिभाषित किया। उसने अपने निर्णय में कहा कि हिन्दुत्व कोई रिलिजन नहीं है; यह तो जीवनशैली है और एक संस्कृति है। इस संबंध में श्री जितेन्द्रवीर गुप्त, पूर्व मुख्य न्यायाधीश पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय ने अपने एक लेख में स्पष्ट किया था कि आज हम अधिक आस्था और विश्वास के साथ 'हिन्दुत्व' की बात कह सकते हैं। अभी तक जो 'हिन्दुत्व' की बात कहने को 'सेक्युलरिज्म' के विरुद्ध मानते थे, आज उन्हें पता लग गया कि भारत पंथनिरपेक्ष है ही इसलिए कि यह हिन्दूबहुल राष्ट्र है।

उन्होंने हिन्दुत्व के विषय में अपनी टिप्पणी करते हुए स्पष्ट किया कि 'हिन्दुत्व' के प्रचार-प्रसार की दिशा में सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय एक महत्वपूर्ण सोपान है।

शशी थरूर ने अपनी पुस्तक को प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक, दार्शनिक और चिन्तक बर्टेंड रसेल की पुस्तक **व्हाय एम आई नॉट ए क्रिश्चियन** की तर्ज पर लिखा है, लेकिन रसेल ने अपनी पुस्तक में जिस उद्देश्य को परिभाषित किया वह शशी थरूर का उद्देश्य नहीं था, उनका उद्देश्य था वर्तमान भारतीय जनता पार्टी की सरकार और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की आलोचना कर उन्हें स्वयं द्वारा परिभाषित हिन्दू धर्म की शुद्ध विचारधारा के विरुद्ध घोषित करना ताकि भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् जिस प्रकार की विचार-पद्धतियाँ पल्लवित और विकसित हुईं उन्होंने कहीं न कहीं भारतीय समाज को तथाकथित उदारवादी घोषित करके उन्हें हतोत्साहित ही करने का प्रयास किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने १९वीं शताब्दी में जिस वैदिक धर्म के आन्दोलन का शंखनाद किया था वह आंदोलन वस्तुतः विशुद्ध वैदिक और सार्वभौम संस्कृति और सभ्यता को तिरोहित करने वाली साम्प्रदायिक शक्तियों के विरुद्ध था और इसीलिए उन्होंने **सत्यार्थ-प्रकाश** में भारतीय अवैदिक मतों के साथ-साथ, ईसाइयत और इस्लाम के विचारों की समीक्षा करते हुए शुद्ध वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना का महनीय प्रयास किया था।

समकालीन संदर्भों में पुनः आर्यसमाज द्वारा मान्य वेदों के आधार पर जो सार्वभौमिक सिद्धान्त युगों से भारत में और भारत से बाहर सम्प्रेषित होते रहे उनकी व्याख्या सरलता के साथ प्रत्येक वर्ग को और वर्तमान संदर्भों में संप्रेषित करने वाले विभिन्न माध्यमों के द्वारा प्रचार और प्रसार करने की महती आवश्यकता है और यह भी आवश्यकता है कि शशी थरूर ने जिन तथ्यों के आधार पर हिन्दू धर्म को व्याख्यायित किया है वे वेदों के आधार

पर व्याख्या नहीं कर रहे अपितु वेदों का मात्र नाम लेकर जिन सम्प्रदायों का विकास किया गया उन सम्प्रदायों की आड़ में अपनी राजनीतिक विचारधारा को हिन्दू धर्म के नाम पर लपेट कर प्रस्तुत करने का कार्य वे कर रहे हैं।

महर्षि दयानन्द और उनके अनुयायियों का तो स्पष्ट मत है कि भले ही हिन्दुत्व नाम से कोई सनातन धर्म प्रचालित हो, परन्तु यदि वह वेद और वैदिक धर्म के मूल सिद्धान्तों से सहमति रखता है, तो वैदिक धर्म का ही हिस्सा है। सांविधानिक रूप से यह बाध्यता है कि 'हिन्दू' नाम से अनेक मतों-सम्प्रदाओं को एकत्र मानकर एक ही वर्ग में रखा गया है। सिक्खों ने इसका विरोध किया, आर्यसमाज का एक वर्ग इसके विरुद्ध न्यायालय गया, रामकृष्ण मिशन ने भी ऐसा ही किया। जैन-बौद्ध इसके विरुद्ध हुए और तो और, एक ही शैव सम्प्रदाय के दो मतों-लिंगायत और वोक्कालिंगा को एक राजनीतिक षड्यंत्र के तहत राज्य सरकार ने विभाजित करने का प्रयास किया। स्पष्ट है कि आज हिन्दुत्व के नाम पर विभिन्न मत-पन्थ और संप्रदायों को जोड़कर रखना कठिन कार्य है। हिन्दुत्व का अनुयायी नाममात्र का हिन्दू है, अन्यथा वह एक परमात्मा और ब्रह्मा, विष्णु, महेश से अधिक साईं बाबा, आशाराम और राम-रहीम तथा रामपाल का भक्त नहीं होता।

जो भी व्यक्ति स्वयं को विशिष्ट, चिन्तक, भगवान्, महान्, राजनेता, महापुरुष घोषित करना चाहता है, वह स्व-अनुकूल तर्क गढ़ लेता है, शास्त्रवचनों की प्रकरण रहित या स्वेच्छाचारी व्याख्या करता है और घटनाओं को अपने पक्ष में मोड़कर प्रस्तुत करता है। ऐसे में श्रीमान् थरूर यदि हिन्दुत्व का वह चेहरा ही दिखाना चाहते हैं, जो अतिशय उदार है और जिसमें कुछ भी सिद्धान्त फिट करके उसे मान्यता दिलाई जा सकती है, तो यह हिन्दुत्ववादियों का भी दोष है, जिन्होंने इसे उदारतावादी से अधिक स्वेच्छाचारी घोषित किया हुआ है। हिन्दुत्व एक ऐसी चरागाह मान लिया गया है जहाँ किसी भी प्रकार के पशु मुँह मारने को स्वतंत्र हैं, क्योंकि वहाँ स्वतन्त्रता या स्वच्छन्दता का साम्राज्य है।

इसी प्रकार ई.डी. विश्वनाथन द्वारा '**क्या मैं हिन्दू हूँ?**' (रूपा प्रकाशन) पुस्तक लिखी गई। इसमें तथाकथित विभिन्न मतों को 'हिन्दुत्व' के नाम से परोसा गया है। ऐसे विद्वान लेखक वेदों के मर्म के आधार पर व्याख्या न कर अन्यों की सुविधानुसार 'हिन्दुत्व' की विवेचना प्रस्तुत कर उन्हें ये मौका देते हैं कि 'हिन्दुत्व' के नाम पर प्रचलित असत्य मान्यताओं को भी उदारवादी मक्खन में लपेटकर प्रस्तुत कर सकें, जो उचित नहीं माना जा सकता इसका खण्डन अपरिहार्य है। इसमें भी बहुत पहले प्रसिद्ध चिन्तक एवं इतिहासविद् श्री रामस्वरूप ने लिखा था, "हिन्दुओं की मनोदशा कुछ ऐसी हो गई है कि ईश्वर अथवा नबी अथवा सन्त के नाम पर कोई भी कबाड़ उनके गले में उतारा जा सकता है। 'समन्वय' शब्द के प्रति उनके मन में विकट मोह है। समन्वय के नाम पर वे भानमती का पिटारा जोड़ते रहते हैं। उन्हें इस बात का ध्यान ही नहीं रहता कि जो-कुछ उन्होंने जोड़ा है उसके बीच कोई बौद्धिक अथवा आध्यात्मिक संगति अथवा सामंजस्य भी है, अथवा नहीं।" (भूमिका, अन्तर्योग)

ऐसे में श्रीमान् थरूर हिंदुत्व की नई परिभाषा और व्याख्या के साथ सामने आ रहे हैं, तो आश्चर्य कैसा!

महर्षि दयानन्द इस स्वेच्छाचार, स्वच्छन्दता और तथाकथित **समन्वय** के विरुद्ध हैं। वे कहते हैं- "एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाए बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति का होना दुष्कर है।"

अब यह हिन्दुत्ववादियों को सोचना है कि यदि **हिन्दुत्व** को जीवनशैली मात्र मानते हैं, तो हिन्दुधर्म क्या है?

मनु महाराज कहते हैं-

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।।

-दिनेश

ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है, वैसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय-व्यवस्था से सुख देवे।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.३९

मृत्यु सूक्त-९

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्य

परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां, यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि, मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्।।

हम इस वेद-ज्ञान की चर्चा में ऋग्वेद के दशम् मण्डल के १८ वें सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। मृत्यु से कहा गया है कि हे मृत्यु! दूसरे रास्ते जाओ जो देवयान से अलग है और हमारी प्रजाओं को, हमारे वीरों को, हमारे परिवारों को, हमारे अपनों को तुम छोड़ दो, दूसरे रास्ते को स्वीकार करो। मृत्यु के बारे में हमने देखा था कि मृत्यु सबकी समान रूप से ही होती है, अन्तर उसके पात्रों पर होता है, मृत्यु को स्वीकार करने वाले लोगों पर होता है। उस स्थिति में उसके साथ किए जाने वाले व्यवहार के बारे में हम बात कर रहे थे कि आत्मा नित्य है, वो चला गया तो इस शरीर के साथ हमें क्या करना चाहिए? तो वेद कहता है **भस्मान्तम् शरीरम्**। किसी भी चीज को, जो आपके अनुकूल नहीं है, आपको दु:ख देने वाली है, रोग फैलाने वाली है, उसका एक ही उपाय है- उसे नष्ट कर दिया जाए।

संसार में हर परिवर्तन नाश का ही पर्याय है, और वह स्वत: होता भी रहता है, किन्तु प्राकृतिक नियमों से होने वाला परिवर्तन हमारे लिए सदा लाभदायक हो, यह आवश्यक नहीं है। ऐसी स्थिति में उस परिवर्तन को लाभदायक बनाने के लिये हमें दूसरी प्रक्रिया अपनानी पड़ती है **'भस्मान्तं शरीरम्'**। हमने देखा था कि हमारे ऋषियों ने अन्त्येष्टि को संस्कार कहा था। यह इष्टि है, यज्ञ है, पितृमेध है आदि शब्दों से एक सामान्य कार्य की हमने बड़ी महत्ता बना दी। हम इसको ऐसे करें कि इसका दोष दूर हो जाए और इसका जो उत्कर्ष है वो सबको प्राप्त हो जाए। इसके लिए ऋषियों ने अन्त्येष्टि में घी-सामग्री आदि का विधान किया। इसको समझने के लिए एक छोटा सा प्रकरण आपको देखना होगा।

ऋषि दयानन्द ने इस जीवन के सुधार और निर्माण के लिए एक ग्रन्थ की रचना की, उसका नाम **संस्कार विधि** है अर्थात् कब-कब, किन-किन अवसरों पर इस शरीर के परिवर्तन को हम स्वीकार करते हैं और उनको श्रेष्ठ बनाने का यत्न करते हैं। वो हमारे संस्कार हैं। वो अवसर हैं, जब-जब इस शरीर को हम सुधार की ओर ले जा सकते हैं। गर्भ से लेकर मृत्यु तक हम उन संस्कारों के द्वारा जीते हैं और हम यह प्रयत्न करते हैं कि हमसे कुछ भी अनिष्ट न हो, बुरा न हो, दु:ख देने वाला न हो। अन्तिम संस्कार के रूप में भी इस शरीर से कुछ बुरा न हो इसके लिए हमारी इस प्रक्रिया को भी यज्ञ के रूप में बदल दिया। यज्ञ के साथ घी का विधान है और यह भी विधान है कि आप कितना बड़ा यज्ञ करने जा रहे हैं, तो घी की मात्रा क्या होगी? सामान्य रूप से जब हम यज्ञ करते हैं तो हमारी चम्मच छ: माशे की होनी चाहिए, १६ आहुति होनी चाहिए आदि-आदि विधान मिलते हैं। बड़े यज्ञ में कितनी आहुतियाँ होनी चाहिए, कैसा कुण्ड होना चाहिए? यह भी बहुत विस्तार से मिलता है, वैसे ही इस अन्तिम यज्ञ में क्या होना चाहिए? ऋषि दयानन्द अन्त्येष्टि संस्कार में और सब बातों के साथ एक बात लिखते हैं कि जो व्यक्ति मरा है, वैसे तो उसके शरीर के वजन के बराबर घी होना चाहिए, अधिक हो तो अच्छा है और कम होने की परिस्थिति भी उन्होंने लिखी है। यदि कोई बहुत ही अनाथ हो, दीन हो, भिक्षुक हो अर्थात् जिसका कोई उत्तराधिकारी न हो, जिसका कोई जिम्मेदार न हो, ऐसा भी यदि कोई व्यक्ति मर जाए तो ऋषि दयानन्द लिखते हैं- या तो राज्य की व्यवस्था हो या समाज या पंचायत की व्यवस्था हो, लोग मिलकर कम से कम २० सेर घी

तो अवश्य डालें अर्थात् २० सेर से कम घी जो व्यक्ति डालता है वो अनाथ है वो भिक्षुक है, वो दरिद्र है। अब आप कल्पना कीजिए कि आजकल की परिस्थिति में सभी अनाथ और भिक्षुक कोटि में आ जायेंगे।

वो कहते हैं कि ऐसा होने से शरीर से उत्पन्न होने वाला दुर्गन्ध, जलने के कारण से, निश्चित रूप से घी के अणुओं के द्वारा शव के विषाणु, रोग के विषाणु नष्ट हो जायेंगे। अग्नि का गुण है विखण्डन करना। वो एक वस्तु को अनेक बार तोड़ देता है, हजारों गुना, लाखों गुना फैला देता है। और घृत का गुण है विष का नाश करना। अग्नि में जब घृत के परमाणु होंगे, तो शव के अन्दर से उत्पन्न हुए रोग के परमाणु उनके सामने टिकेंगे नहीं और घृत के द्वारा वातावरण में स्वच्छता और पवित्रता का स्थान बन जाएगा। इसलिए ऋषियों ने इस अन्तिम कार्य को भी इष्टि कहा है।

वैदिकधर्मी तो इसको जला देते हैं और इतना ही नहीं, इसके जलने के बाद शेष तो केवल मुट्ठी भर राख होगी, थोड़ी बहुत हड्डियाँ हो सकती हैं, आप उनको इकट्ठा कीजिये और स्थान खाली कर दीजिए ताकि दूसरे शव को जलाया जा सके और, जो राख मिली है उसको खेतों में, पेड़-पौधों में डाल दीजिए। जो लोग इसको दूर ले जाकर प्रवाहित करना चाहते हैं और वो समझते हैं कि वहाँ डालने से मुक्ति मिलेगी-यह तो ऐसा हुआ जैसे मैं यात्रा पर निकला और कोई मेरा सामान उठाकर कहीं डाल दे और वह यह समझे कि मैं उस सामान के अनुसार चलूँगा। यह कैसे संभव है। जब मेरा सामान मेरे से अलग हो गया, तो वह मेरे साथ नहीं जा सकता और मैं उसके साथ नहीं जा सकता। इसलिए कोई आदमी यह समझता हो कि राख को नदी में डालने से आत्मा को मुक्ति मिलेगी तो वह गलत सोचता है। राख तो नदी में है, नदी में पड़ी रहेगी, पानी को दूषित भले ही करे। प्रवाहित भी हो गई तो जहाँ तक पानी रुकेगा, वहाँ तक चली जाएगी। लेकिन आत्मा उसके साथ कैसे चला जायेगा? यह तो बड़ी विचित्र बात है। मेरे सामान और मेरे शरीर में कुछ भी अन्तर नहीं है। इसका मूल्य केवल तब तक है जब तक ये मेरे साथ हैं। मेरा कपड़ा है, मेरे साथ तब तक चलता है जब तक इसको मैं पहनता हूँ। मेरा घर मेरा तब तक रहता है जब तक मैं उसके साथ हूँ और जिस क्षण मैं उसको छोड़ देता हूँ वो मेरा नहीं होता। तो वैसे ही जिस क्षण मैं शरीर को छोड़ दूँगा तो वह शरीर भी मेरा नहीं होगा। इसलिए यह कल्पना करना कि मेरी अस्थियों को प्रवाहित कर देने से मुझे मुक्ति मिलेगी, यह गलत है। **मुझे तो मुक्ति मेरे शरीर से उसी क्षण मिल गई जब मैं अलग हो गया। उसके बाद कुछ भी करते रहिए, यह आपकी इच्छा है।** आप इसको किस तरह से उपयोग करके, इससे क्या लाभ-हानि उठाते हैं, यह आपकी इच्छा की बात है।

विचित्र बात यह है कि इस शरीर को भोजन मैं कराता हूँ, तो मुझे लगता है कि मैं कर रहा हूँ। इसलिए लगता है कि मैं इसके साथ हूँ। जैसे मेरे साथ चलने वाले आदमी को मैं खिलाऊंगा तो मुझे लगेगा कि मेरी भी तृप्ति है। मेरा आदमी भूखा रहे तो मैं कैसे प्रसन्न रह सकता हूँ। मैं भूखा रहूँ, मेरा शरीर भूखा रहे तो मेरी आत्मा कैसे प्रसन्न रह सकती है? जो मेरे जितना नजदीक होता है, वो मुझे उतना प्रभावित करता है और जो चीज मेरे से दूर चली जाए, फिर वो चाहे मेरा शरीर ही क्यों न हो, फिर वो मुझे प्रभावित कैसे करेगा? मेरा-उसका संबन्ध ही समाप्त हो गया। जब संबन्ध समाप्त हो गया तो प्रभावित करने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता है। इसलिए कोई व्यक्ति यह सोचे कि गंगा में प्रवाहित करने से या जमीन में गाड़ने से, या आसमान में छोड़ने से, आत्मा का कोई संबन्ध बचा रहेगा, तो वो गलत है। और यह सोचना भी गलत है कि किसी को खिला देने से और किसी को मिल जाएगा। जो खा रहा है उसकी तृप्ति हो जाएगी, जो नहीं खा रहा है उसकी तृप्ति कैसे हो जाएगी? और शरीर के बिना खाएगा कैसे? यहाँ तो आप थैले में ले जा रहे हैं और अगले के पास थैला है ही नहीं तो दोगे कैसे? वह

रखेगा कैसे? आप पात्र में ले गए हैं, पात्र उसके पास है तो आप पात्र से पात्र में डाल सकते हैं, लेकिन आपके पास पात्र है और दूसरे के पास पात्र ही नहीं है, तो आप अपने पात्र की वस्तु दूसरे को कैसे देंगे? वो संभव ही नहीं होगा। इसलिए यह सोचना कि मृत्यु के बाद मृतक के लिये कुछ करेंगे तो ठीक होगा, वो गलत है।

ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि तीसरे दिन के बाद कुछ भी कर्त्तव्य शेष नहीं रहता और शेष यदि रहता है तो स्मृतियाँ हैं, उन स्मृतियों को आप जीवित रखना चाहते हैं, अच्छी स्मृतियाँ है तो उनकी अनुपालना कीजिए। आप उनकी स्मृति को जागृत रखना चाहते हैं तो परोपकार कीजिए, धर्म कीजिए। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के रूप में, ज्ञान के प्रचार-प्रसार के रूप में, शरीर की आवश्यकताओं को बाँटने के रूप में-आप वस्त्र दें, धन दें, अन्न दें वो आपकी इच्छा है, वो परोपकार के लिए है, वो आपकी सन्तुष्टि के लिए है, वो आपके कर्त्तव्य के रूप में है, उसका जाने वाले के साथ कोई संबन्ध नहीं बनता।

इस दृष्टि से शास्त्र एक बात कह रहा है-**भस्मान्तं शरीरम्**। इस शरीर को यदि आप भस्म करने की जगह खुला छोड़ देते हैं तो दुर्गन्ध का कारण है। हम परोपकार की बात करते है, एक सज्जन कहने लगे- मैं तो शव को नीचे गाड़ कर उसके ऊपर एक पेड़ लगा देता हूँ। आप लगा सकते हैं, लेकिन इसका खाद अच्छी होगी क्या? यहाँ जो जमीन में वातावरण कुछ न कुछ तो बिगड़ गया और कालान्तर में उसका प्रभाव शरीर पर पड़ेगा। हमारे घरों की जमीन में भी यदि हमने अच्छी सफाई न की हो तो संक्रमण फैलता है। विज्ञान स्वीकार करता है कि यदि हम कचरे के ढेर पर अपना मकान बनाते हैं तो उसके अन्दर विषैली गैसें भी पैदा होती हैं, उसके संक्रमण भी पैदा होते हैं, इसलिए विदेशों में जब भवन बनाया जाता है तो स्थान को शुद्ध करके, अच्छा करके, उसकी चिकित्सा करके फिर उस पर बनाया जाता है। तो यह जो धारणा है कि हम किसी मुर्दे को नीचे गाड़ देंगे और उसके ऊपर पेड़ लगा देंगे तो पेड़ को खाद तो निश्चित रूप से मिल जाएगा और वो पेड़ बढ़ भी जायेगा लेकिन उसके अन्दर पवित्रता के गुण होंगे क्या? ये स्वीकार्य नहीं हो सकता। जो लोग बाहर शव को छोड़ देने में विश्वास करते हैं, वह भी इसलिए अनुचित है कि वो वातावरण को दुर्गन्धित अधिक करता है। जो तीसरे लोग हैं वो जल में ही प्रवाहित कर देते हैं। साधुओं को जल में प्रवाहित करते हैं, साधुओं को तो इसलिए करते हैं कि साधुओं को अग्नि देने वाला कोई होता नहीं। जहाँ मरा वहीं फेंक दिया, मछलियों ने खा लिया, चले गए। ये तो आसान तरीका अपनाया आपने। लेकिन जो होना चाहिए, वो यही है कि उसकी अन्त्येष्टि होनी चाहिए, क्योंकि शरीर तो चाहे साधु का हो, शरीर चाहे गृहस्थी का हो, शरीर चाहे किसी और का हो, शरीर तो शरीर है, और इस शरीर का परिणाम सब के साथ एक जैसा है। इस शरीर के सड़ने, गलने से दुर्गन्ध तो निकलनी ही है, दुर्गन्ध पैदा होनी ही है। इस स्थिति में यह सोचना कि साधु के शरीर को तो जलाना नहीं चाहिए और गृहस्थी के शरीर को जलाना चाहिए, यह धारणा गलत है। शरीर का तो धर्म ही नष्ट होना है। जलना नष्ट होने की सबसे आसान और सबसे शीघ्रकारी प्रक्रिया है। इसलिए **भस्मान्तम् शरीरम्** यही सर्वोत्तम है इसमें भी कैसा काष्ठ होना चाहिए, कितनी सामग्री होनी चाहिए, कितना घी होना चाहिए, कौन से वेद मन्त्र बोलने चाहिए कि एक सामान्य सा काम भी आदर्श बन जाए, एक यज्ञ बन जाए, एक परोपकार का काम बन जाए। यह ऋषि-पद्धति है, ऋषि-शैली है।

हमने इस शरीर के साथ-साथ कई बातों को समझा। पहली बात यह समझी कि इसके अन्दर से जो जीवन निकल गया है, वह **वायु** है, वो क्रियाशील है, **अनिलम्** है, वो कभी भी नष्ट नहीं होता है, **अमृतम्** है, सदा विद्यमान रहता है, इसलिए उसको कुछ करने को शेष नहीं है। उसकी व्यवस्था परमेश्वर की है। वो जन्म के

बाद हमसे जुड़ता है और मृत्यु के बाद हमसे अलग हो जाता है। इसलिए जैसे हमारे जन्म या गर्भ में आने से पहले उसके प्रति हमारा कोई उत्तरदायित्व नहीं था या उसकी- हमारी कोई पहचान नहीं थी, वैसे ही मृत्यु के बाद भी उसकी-हमारी कोई पहचान नहीं रहती। उसके प्रति हमारा कोई उत्तरदायित्व नहीं बनता। संस्कार सबके अपने रहते हैं और अपने-अपने संस्कारों के साथ परमेश्वर की व्यवस्था के साथ उसकी गति होती है। जो लोग यह समझते हैं कि बारहवाँ मनाना चाहिए, एक साल मनाना चाहिए, छः महीने मनाना चाहिए, उनकी अपनी सन्तुष्टि है। इसमें दो मुख्य कारण काम करते हैं- एक तो मनुष्य की भावुकता है, मोह है, आसक्ति है, उसका बन्धन है। उसको वो जितना याद करता है, उतना उसको स्मरण कराने वाली वस्तुओं से लगाव होने लगता है, उसके प्रति प्रेम प्रदर्शित करता है दूसरे लोग इस अवसर का लाभ उठाते हैं और इस अवसर का लाभ उठाकर के उसका धन लूट लेते हैं और उसका धन लूट करके अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में यह सोचना कि उसके लिए कुछ कर रहे हैं, यह नितान्त अज्ञान है, मिथ्या है और यह केवल एक स्वार्थपरता है, स्वार्थसिद्धि के लिए किए गए उपाय हैं। इस दृष्टि से जब हम विचार करते हैं तो हमको यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है कि हमारे जन्म, हमारे जीवन और हमारी मृत्यु में हमारी भूमिका हमारे शरीर तक है, इसलिए कहा-**भस्मान्तम् शरीरम्।**

शंका-समाधान-२६

संशोधन-भूल-सुधार

परोपकारी जून प्रथम-२०१८ में पृष्ठ संख्या-२९ पर टंकण की भूल से कुण्डली के चित्र संख्या- १ व २ अपूर्ण मुद्रित हुए हैं। सही चित्र निम्न हैं-

उन्नति का कारण सत्योपदेश

जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

(स. प्र. ३)

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ- प्रवचन, वेद-पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***- आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***- अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***- गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***- वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***- इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***- योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१ से १५ जून २०१८ तक)

१. वृद्धिचन्द्र गुप्त, जयपुर २. मै. स्वस्तिकॉम चेरिटेबिल ट्रस्ट, अमरावती ३. श्री ओमपाल सिंह, नई दिल्ली ४. श्री जयपाल सिंह, गाजियाबाद ५. श्री परमानन्द पटेल, झूंसी, इलाहाबाद। **- परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(१ से १५ जून २०१८ तक)

१. ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैन्ट २. सुशील कुमार (गुप्ता) आर्य, बुलन्दशहर ३. श्रीमती रतनी देवी, अजमेर ४. श्री दुर्गाशंकर कृष्णकन्हैया मन्त्री चेरिटेबिल ट्रस्ट, अजमेर ५. श्रीमती चम्पादेवी, अजमेर ६. श्री अशीष गोयल, अजमेर ७. श्री गौरव शुक्ला, अजमेर ८. सुश्री मेघा टंडन, अजमेर। **- परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अतः सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अतः लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।

-संपादक

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित ऋषि मेले में आप सभी आमन्त्रित हैं।

१६, १७, १८ नवम्बर २०१८, **सम्पर्क**- ०१४५-२४६०१६४

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

केवल ठाकुर अमरसिंह जी ने समझा- 'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर' के दूसरे भाग के सम्पादन का कार्य इस समय चल रहा है। देश भर से कुछ जानकारी लेने, प्रश्नों के उत्तर पाने व अलभ्य पुस्तकों के प्रमाण पूछने के लिये दिनभर चलभाष प्राप्त होते हैं। कई भाई कुल्लियात के आने वाले संस्करण के बारे में सुरुचि से पूछते हैं। प्रयाग के वयोवृद्ध विद्वान् श्री श्यामकिशोर जी तो बहुत भाव-विभोर होकर इस ग्रन्थ रत्न के सम्पादन पर चर्चा करते रहते हैं। वह मुझसे आयु में कुछ छोटे हैं। भावुक होकर पं. शान्तिप्रकाश जी व ठाकुर अमरसिंह को याद करते हुये कहा, आप इस आयु में इन अविस्मरणीय पूज्य महारथियों के पगचिह्नों पर चलते हुये निरन्तर लेखनी चला रहे हो। मैंने कहा, यह उन्हीं के आशीर्वाद का फल है।

उन्हें एक संस्मरण सुनाया। आर्यमात्र इससे कुछ सीख सकते हैं। कोई चालीस वर्ष हो गये। हिसार के पटेल नगर समाज में ऋषि बोध या निर्वाण पर्व पर ठा. अमर सिंह जी तथा सेवक आमन्त्रित थे। उपस्थिति बहुत अच्छी थी। मैंने अपने व्याख्यान में ऋषि से पूर्व के भारत की स्थिति पर अपनी एक कविता की ये पंक्तियाँ भी सुनाईं-

कोई दूत बना, कोई पूत बना कोई ईश्वर स्वयं आप बना।

मत हँसना बात यह सच्ची है, कोई परमेश्वर का बाप बना।।

ये पंक्तियाँ श्रोताओं को बहुत अच्छी लगीं, परन्तु दूसरी पंक्ति का सन्दर्भ ठाकुर अमरसिंह जी के अतिरिक्त कोई न समझ सका। उस युग में तो आर्यजगत् में कई ऐसे विद्वान् थे। अब की क्या कहें। ठाकुर अमरसिंह तो इसे सुनकर फड़क उठे। इस विषय पर आर्यसमाज में केवल मैंने ही यह पद्य रचा है सो ठाकुर जी ने उदार हृदय से इस पर वाह! वाह!! कही। मिर्ज़ा गुलाम अहमद ने ही लिखा है कि अल्लाह ने उसे शुभ सूचना दी है कि तेरे यहाँ एक एक पुत्र पैदा होगा जो हूबहू ख़ुदा होगा। वह कभी धराधाम को बनाने वाला अल्लाह बना, कभी अल्लाह की बीवी बना तो यहाँ परमात्मा का बाप बन बैठा। तब आर्यसमाज में ठाकुर अमरसिंह जी जैसे अथाह ज्ञान रखने वाले अनेक विद्वान् थे। अब आचार्य तो अनेक हैं आर्यसमाज पर प्रहार करने वालों का उत्तर देने वाले कितने हैं? इस कमी को पूरा करने की कोई योजना?

यह प्रमाण पूछा जाता है- इस समय कई विश्वविद्यालयों में मान्या हरदेवी जी पर कई शोधकर्त्ता शोध कर रहे हैं। परोपकारिणी सभा और परोपकारी ने श्रीमती हरदेवी को आर्यसमाज से छीनने या उसको अनार्यसमाजी बनाने की कुचाल तो विफल बना दी है। एक प्रश्न और खड़ा किया जा रहा है कि इसका क्या प्रमाण है कि रोशनलाल जी व हरदेवी का विवाह इस युग में सबसे पहला महत्त्वपूर्ण पुनर्विवाह था, जो कड़े विरोध के होते हुये भी सम्पन्न हुआ। मैंने भी कहाँ-कहाँ किस-किस लेख में ऐसा पढ़ा, यह ठीक-ठीक याद न कर सका।

इस प्रश्न को चुनौती मानकर नये सिरे से उत्तर के लिये प्रमाण खोजने लगा। 'अवध रिव्यू' मासिक लखनऊ के अगस्त सन् १८९९ के अंक में हरदेवी जी ने स्वयं लिखा है कि Widow Remarriage Act विधवा पुनर्विवाह अधिनियम के अनुसार मैंने बैरिस्टर रोशनलाल जी से विवाह कर लिया। कई प्रमुख व्यक्ति इसके साक्षी बने। यह तो सम्भव है कि आर्यसमाजेतर व्यक्ति व संस्थायें तो मेरी पठन-पाठन व अध्ययन की प्रवृत्ति के कारण मेरे कथन पर विश्वास करके इसे स्वीकार कर लें, परन्तु आर्यसमाज में क्या पता लम्बे-लम्बे लेख लिखकर कौन यह शोर मचा दे कि यह कहाँ लिखा है कि विधवा हरदेवी से रोशनलाल जी ने विवाह करके अद्भुत साहस का परिचय देकर एक इतिहास रच दिया। माता भगवती विधवा थी मेरे ऐसा लिखने पर न जाने कितने पत्रों में लेख छपा कि कहाँ लिखा है कि वह विधवा थी।

अभी से हरदेवी जी के लेख की ज़ेरोक्स मांगने वालों की लाइन लगनी आरम्भ हो गई है।

ग्राम-प्रचार- एक समय था महात्मा मुंशीराम जी, पं. गणपति जी, श्री नारायण स्वामी जी, ला. देवीचन्द जी, देहलवी जी सब सोत्साह बिन बुलाये ग्रामों में प्रचारार्थ जाते थे। श्यामभाई और पं. नरेन्द्र जी ने हैदराबाद राज्य के ग्राम-ग्राम में

वेद प्रचार की धूम मचा दी। मास्टर नन्दलाल जी (एक पूर्व प्रधान, डी.ए.वी. कॉलेज कमेटी) के मुख से मैंने अध्यापक के रूप में उनके ग्राम प्रचार के संस्मरण कई बार सुने। मेहता जैमिनि जी ने भी अध्यापन काल में पंजाब तथा अजमेर क्षेत्र में प्रचार का इतिहास रचा। आज स्कूलों वाले बहुकुण्डी हवन करके फोटो तो छपवाते रहते हैं। डॉ. अशोक जी के और मेरे अतिरिक्त ग्राम-प्रचार में किसी ने डी.ए.वी. में कुछ किया हो तो नाम बताओ। स्वराज्य का शब्द ऋषि ने दिया- ऐसी तो तोतारटन हम लेखों में पढ़ते रहते हैं। आर्यसमाज व ऋषि दयानन्द का अवमूल्यन करने वाले किसी लेख को कभी ऐसे लेखकों, आचार्यों ने चुनौती दी क्या?

मैक्समूलर का नाम ले-लेकर अपनी जीभ को सौ-सौ बार चाटने वालों ने कभी यह बताया कि मैक्समूलर ने अपनी अन्तिम पुस्तक में ऋषि को विष दिया जाना तो लिखा है, परन्तु आर्यजाति व आर्यधर्म के विरुद्ध भी बहुत कुछ लिखा है। हरियाणा में देवनगर ग्राम के आर्यवीरों ने अपने संगठन व प्रचार की धूम मचा दी तो हरियाणा में सब छोटे-बड़े देवनगर के उत्सव पर निमन्त्रण प्राप्त करने के लिये उत्सुक रहते हैं। लगभग बीस वर्ष से श्री अनिल जी, महेन्द्र सिंह जी, रोशनलाल जी प्रिंसिपल, इन्द्रजित् आदि उधर से ऋषि मेला पर अजमेर आ रहे हैं। हरियाणा के किसी बड़े व्यक्ति ने उनका नाम अता-पता तक न पूछा और उनकी सुगंध अमरीका तक पहुँच गई। आर्यसमाज के संगठन को यह घुन कैसे लगा और किनके कारण लगा? यह बताने का समय अभी नहीं आया।

गाँधी जी ने भगत सिंह शहीद को दोष दे दिया- इतिहास प्रेमियों को अनेक बार बड़ों की कुछ बड़ी-बड़ी बातों को पढ़ने, सुनने व सुनाने का अवसर मिलता है। इनमें कुछ ऐसी विचित्र बातें भी होती हैं जिन्हें 'बड़ों की बड़ी भूलें' लिखना व कहना अधिक उपयुक्त होता है। महाशय राजपाल जी के बलिदान पर जब हिन्दुओं ने महाशय जी को धर्मवीर व हुतात्मा लिखा व कहा तो गाँधी जी ने अपने पत्र में यह लिखा कि यह धर्मवीर कैसा? यह तो एक पुस्तक विक्रेता व्यापारी था। गांधी जी को यह याद न रहा कि उनकी भी पुस्तकें व पत्रिका बिकतीं थीं फिर वह क्या महात्मा नहीं कहलाते थे?

गाँधी जी ने तब राजपाल जी के साथ क्रान्तिकारी भगतसिंह को भी लपेट लिया। अपने पत्र 'यंग इण्डिया' के १८ अप्रैल १९२९ के अंक में लिखा, "**अभी उस दिन केन्द्र की विधानसभा में कुछ हिन्दू नामधारी व्यक्तियों ने बम फेंका था...आजादी के नाम पर बम फेंकने वालों ने देश की आज़ादी के काम को क्षति पहुँचाई थी।**"

इस पर हमारी किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। अंग्रेजों से विधिवत युद्ध छेड़ने वाली **आज़ाद हिन्द सेना** के युद्धबन्दियों का गाँधी जी के आशीर्वाद से कांग्रेस ने केस लड़कर यश पाया और सत्ता भी प्राप्त की।

दलितों के घर पर भोजन- पहले राहुल दलितों के घरों में भोजन करके समाचार बनाकर लीडरी चमकाने में लगा रहा। अब कुछ वर्षों से भाजपा के छोटे-बड़े लीडर ऐसी खबरें बनाकर अपना उपहास आप उड़ा रहे हैं। विरोधी तो व्यंग्य कस ही रहे हैं। संघ को भी इस विषय में फ़र्मान जारी करना पड़ा। वास्तव में यह कार्य राजनीतिक दलों के बस का नहीं है। जाति-पाँति की जड़ तभी कटेगी जब ये नेता लोग उदार हृदय से आर्यसमाज के सन्देश-उपदेश को अपनाकर अपना व्यवहार बदलें। समरसता का, एकता का मार्ग वही है जो ऋषि दयानन्द ने सुझाया, दिखाया और बताया। अस्पृश्यता से युद्ध छेड़ने वाले, बलिदान देने वाले आर्यों का नाम तक ये पक्षपाती राजनेता लेने से डरते हैं।

जम्मू राज्य के आर्यनेता कर्मचन्द वकील को दलितोद्धार के लिये लड़ने पर पिता ने कहा- या घर को छोड़ दो या फिर आर्यसमाज को छोड़ दो। तत्काल सुयोग्य वीर पुत्र ने पिता का घर छोड़ दिया। लेखराम के सैनिक कर्मचन्द ने सौ वर्ष की आयु पाकर दिल्ली में प्राण त्यागे। पिता ने हार मानकर बार-बार घर आने को कहा, परन्तु उसने मरणपर्यन्त फिर उस घर में पैर नहीं धरा। स्वामी श्रद्धानन्द के इस लाडले ने पिता से, परिवार से भी बुरा-भला कुछ नहीं कहा। अपनत्व बनाये रखा, परन्तु दलितों से घुल-मिलकर जीने का इतिहास बनाने वालों में श्री कर्मचन्द को भले ही दिल्ली के आर्यसमाजी आज नहीं जानते, परन्तु मेरे जैसे ऋषि-भक्तों की लेखनी इस इतिहासपुरुष को सदा जीवित रखेगी। आगे और भी ऐसा इतिहास क्रमशः देंगे।

महर्षि दयानन्द का 'गुजरात निकाला'- बाल्यकाल की अपनी एक घटना रह-रह कर याद आती है। मैं सातवीं

कक्षा में पढ़ता था। लगभग चार मील की दूरी पर अपने एक काका के पुत्र श्री कृष्ण के साथ (अब कोटा में है) पैदल स्कूल जाया करता था। हमारे ग्राम के एक आर्य श्री सोहनलाल की पुत्री शान्ति का विवाह स्यालकोट से बुलाये गये पं. शिवदत्त जी ने प्रात: समय वैदिक रीति से करवाना था। हम दोनों ने मन बनाया कि स्कूल में देरी से पहुँचेंगे, परन्तु विवाह संस्कार देखकर ही जायेंगे।

विवाह संस्कार होते ही ग्राम की देवियों ने पण्डित जी से माँग की, ''गुजरातों चढ़या चाँद'' यह भजन सुनायें। वह बहुत अच्छे गायक थे। यह पंजाबी गीत आर्य लोग झूम-झूम कर तब गाया करते थे। ग्राम-ग्राम में जनता जान गई कि ऋषि दयानन्द गुजराती थे या गुजरात में जन्मे थे। मोदी जी राष्ट्रीय राजनीति में आगे आये तो नमक, दूध और गुजरात की एक-एक वस्तु को लेकर गुजरात मॉडल की धूम मचा दी। मेरठ गये और फिर दक्षिणी हरियाणा गये तो वहाँ भी एक ग्राम में गुजरात के ऋषि दयानन्द का नाम लिया।

फिर गुजरात से ऋषि दयानन्द को देश निकाला दे दिया गया। संसार में पहली महिला जिसे किसी संगठन ने सर्वसम्मति से अपनी एक शाखा का प्रधान चुना वह माता लाडकँवर रेवाड़ी के राव युधिष्ठिर सिंह की पत्नी थी।

भारत में 'कंगाली' (भारत की ग़रीबी) पर सबसे पहले गुजरात में जन्मे श्यामजी कृष्ण वर्मा ने परोपकारिणी सभा के उत्सव पर व्याख्यान दिया था।

आधुनिक भारत के शिक्षा संस्थान डी.ए.वी. के जन्म पर लाहौर में हुई पहली सभा में भारत के सार्वजनिक जीवन की प्रथम सुधारक महिला जिसने व्याख्यान दिया, वह माता भगवती उसी गुजरात में जन्मे ऋषि की शिष्या थी।

विश्व में जिस महिला की सबसे पहले जीवनी उसके विश्वप्रसिद्ध विद्वान् पति ने लिखी, वह गुजरात में जन्मे उसी ऋषि की शिष्या पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय की पत्नी माता कलादेवी थी।

विश्व में केवल ऋषि दयानन्द के आर्यसमाज का ध्वज गीत दो देवियों (सगी बहिनों) ने लिखा है। भारत में जिस उच्च शिक्षित निर्धन नेता ने सन् १८७५ में सबसे पहले जाति-बन्धन तोड़ कर विवाह किया वह गुजरात में जन्मे ऋषि के शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा थे। श्यामजी और उनकी पत्नी भी गुजराती थे। भारत में किसी प्रख्यात नेता बैरिस्टर ने एक विधवा से विवाह करने का साहस दिखाया, वह गुजरात के ऋषि दयानन्द का शिष्य रोशनलाल था।

भुज के अवयस्क राजा और उसकी भोली निर्धन प्रजा को अंग्रेजों के शोषण से बचाने की चिन्ता उसी ऋषि ने की।

जिस नीलकण्ठ शास्त्री पादरी की महारानी विक्टोरिया तक पहुँच थी, जिसने महाराजा रणजीत सिंह के पुत्र को ईसाई बना दिया, जिसके मैक्समूलर ने गीत गाये-उसको मैदान से केवल ऋषि दयानन्द ही भगा सका। अंग्रेजी न्यायपालिका के पक्षपात की वाणी व लेखनी से धज्जियाँ उड़ाने वाला सबसे पहला भारतीय विचारक गुजरात में जन्मा ऋषि दयानन्द ही था।

पश्चिमी देशों में पुस्तकों व पत्रों में जिस भारतीय महापुरुष की धूम मच गई और अमेरिका में सन् १८७८ में सबसे पहले उसके चित्र सहित उस पर एक लम्बा लेख छपा । उसके शौर्य, साहस, विद्वत्ता व स्वदेश-प्रेम की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई, वह गुजरात में जन्मा दयानन्द ही था।

अब मोदी जी को गुजरात मॉडल तो याद है, परन्तु गुजरात से निष्कासित दयानन्द का नाम वह क्यों लें? श्यामजी कृष्ण वर्मा के स्मारक में स्वामी विवेकानन्द को तो लाना याद रहा, परोपकारिणी सभा के भवन का और हरविलास शारदा का चित्र नहीं दिया। काशी में कभी ऋषि का नाम लिया? कोई स्मारक बनवाया। काशी में १८६९ का ऋषि का शास्त्रार्थ प्रख्यात इतिहासकार ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में तब ''स्वामी जी के विचारों का देश में वही प्रभाव पड़ा जो बम्ब गोले के गिरने का किसी शान्त सभा में हो।''

जातिवादी पोंगापंथी पण्डितों का आज भी काशी में पूरा दबदबा है, सो काशी में स्मारक बनवाना तो दूर, मोदी जी वहाँ आज तक ऋषि की कर्मभूमि काशी में उनका नाम तक लेने का साहस नहीं जुटा पाये। हम मोदी जी के अच्छे कार्यों के तो प्रशंसक हैं, परन्तु जातिवादियों से घिरे होने से हम उनकी विवशता पर उन्हें कुछ नहीं कह सकते। भले ही गुजरात से ऋषि को निष्कासित करने में सरकार सफल हो गई है, परन्तु हम सरदार पटेल के नामलेवा हैं। हम यह घोषणा करते हैं-देश का नवनिर्माण और कल्याण ऋषि की अमृतधारा से ही होगा।

कुछ इधर की-कुछ उधर की- अमेरिका से हमारे वैदिक मिशनरी प्रो. रमेश मलहन ने चलभाष पर मुझसे खुलकर बातचीत की। कुल्लियात के प्रकाशन की उन्हें जानकारी दी। वह जब मेरे पास आयेंगे तो उन्हें ऋषि उद्यान लाऊँगा ही। उनके पिताजी पं. लेखराम स्मारक भवन का निर्माण करवाने का गौरव प्राप्त कर सके। स्वामी श्रद्धानन्द जीवन यात्रा ग्रन्थ का शिकागो में डॉ. हरिश्चन्द्र जी विमोचन करेंगे। यह चर्चा डॉ. हरिश्चन्द्र जी से हो चुकी है। आशा करनी चाहिये कि वहाँ आर्यमात्र के लिये इस ग्रन्थ का विमोचन एक स्मरणीय ऐतिहासिक घटना सिद्ध होगी। स्वामी श्रद्धानन्द संन्यास-दीक्षा शताब्दी ऋषि उद्यान में अप्रैल में मेरे व्याख्यानों से आरम्भ हुई। परोपकारिणी सभा ने इसको अमेरिका तक तो पहुँचा दिया, भले ही भारत में समाज निष्क्रिय रहा। शताब्दी पर संगठन ने क्या उल्लेखनीय कार्य किया?

हिन्दुओं की हीन भावना- हिन्दू जातिवाद व जड़पूजा में तो पक्का है, परन्तु हीन भावना में बेजोड़ है। इसी हीन भावना से कुछ हिन्दुओं ने धर्म-दर्शन विषय में कुछ प्रश्न मैक्समूलर के पास शंका समाधान के लिये भेजे। तब क्या भारत में कोई दर्शन का मर्मज्ञ नहीं था। स्वामी विवेकानन्द जी को ही यह कष्ट दे देते। मैक्समूलर की पोथी से ही दो प्रश्न यहाँ दिये जाते हैं।

१. Did the Creator bestow rewards on the actions of men in a former life, or did He create them freely of His own accord? Is the Giver of rewards, the Ruler od the Universe or simply the Creator?

२. How is it then, that God created rich and poor, happy and sad? what were the acts that could have produced such results?

उन मूर्ख हिन्दुओं को क्या तब इतना भी ज्ञान नहीं था कि इससे बहुत पहले पं. गणपति जी शर्मा, पं. लेखराम जी और पं. कृपाराम जी के एतद्विषयक व्याख्यानों व साहित्य की पश्चिम में अमेरिका तक धूम मची हुई थी। अब इनके उत्तर (सभी प्रश्नों के) हम अगले अङ्कों में देंगे।

एक प्रतिक्रिया- स्वामी श्रद्धानन्द जीवन यात्रा ग्रन्थ पर श्री रोहताश जी आर्य की सबसे पहले प्रतिक्रिया प्राप्त हुई है। आपने लिखा है, इतने अलभ्य स्रोतों तक और किसकी पहुँच है ऐसा ग्रन्थ इतने स्रोतों के बिना कौन लिख सकता है। मूल्याङ्कन के लिये धन्यवाद।

सभाओं की आत्मघाती सेवा- कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर का कार्य मुझे सौंपा गया तो पता चला कि सार्वदेशिक द्वारा प्रकाशित श्री सच्चिदानन्द शास्त्री के संस्करण में वह सम्पादक तो बन गये, परन्तु किया क्या? वह तो इस विषय के मर्मज्ञ पण्डित शान्तिप्रकाश जी के पं. लेखराम सम्बन्धी लेख की एक पंक्ति पढ़कर भी नहीं समझा सकते थे सो इस बेजोड़ लेख का नाश कर दिया। पंजाब सभा ने सिद्धान्ती जी के प्रेस के भागीदार रहे चन्द्रमोहन जी के सैनी प्रिंटर्स को यह ग्रन्थ प्रकाशनार्थ दे दिया। प्रेस का लम्बा अनुभव होते हुये भी आपने दायें-बायें, ऊपर-नीचे कहीं भी प्रूफ़ की अशुद्धि के चार अक्षर के शब्द को भी शुद्ध करने के लिये बॉर्डर नहीं छोड़ा, पाद टिप्पणी की बात दूर रही। बोलिये! सम्पादक क्या करे? महेन्द्र जी का कथन यथार्थ है कि अशुद्धियाँ पहले निकालने से ग्रन्थ का मुद्रण बढ़िया होगा। दोष सारा पंजाब सभा का है जिन्होंने एक विपदा टालने के लिये इस ग्रन्थ के प्रकाशन को हाथ में लिया, यह धर्म-कर्म नहीं कहा जा सकता।

श्री अलिफ़ नाज़िम की प्रंशसनीय अथक सेवा- डॉ. अलिफ़ नाज़िम जी एक युवा देशभक्त मुसलमान ने महाकवि सुरूर के साहित्य के सम्पादन के लिये जितनी खोज व उद्योग किया है, वह प्रशंसा योग्य है। वह इस आर्यसमाजी महाकवि के काव्य को देवनागरी में प्रकाशित करने में हमारे भी निष्काम सहयोगी रहे हैं। सुरूर जी को आज उर्दू साहित्य के इतिहास में प्रतिष्ठापूर्ण स्थान मिला है तो इसमें आपका पुरुषार्थ अत्यन्त सराहनीय है।

सुरूर जी की पं. लेखराम जी के बलिदान पर रची गई मुसद्दस लाख यत्न करने पर भी अभी तक हमें नहीं मिली। आपने कहा है कि मैं इसे खोजकर आपको अवश्य उपलब्ध करवाऊँगा।

हमारा यत्न होगा कि इस विनम्र, प्रेमल, सुयोग्य और देशसेवक साहित्यकार को इस बार ऋषि मेला पर अजमेर खींचा जावे। सुरूर जी की 'वेदवाणी' कविता हमें आप ही ने उपलब्ध करवाई। ईश कृपा से हमारी यह कामना पूर्ण होगी। ऋषि मेले पर उनके दर्शन हो सकेंगे।

'मनु' के अनुपलब्ध श्लोक

आचार्य उदयवीर शास्त्री

मनुस्मृति एक प्राचीन धर्मशास्त्र है। इस शास्त्र की प्रामाणिकता का प्रभाव आर्य-जनता पर चिरकाल से चला आता है। मनु का यह धर्म-शासन युग-युगान्तर से धर्म-प्राण आर्यजन का प्रत्येक दिशा में पथ-प्रदर्शन कर रहा है। कालान्तर में अनेक धर्म-शास्त्र समयानुसार प्रादुर्भाव में आये, पर इसके स्थान को कोई ले न सका। इसकी छाया में आबाल-वृद्ध मानव-समाज ने अपने वर्णाश्रम-धर्मों का पालन करते हुए अजस्र सुख-शान्ति का लाभ लिया है। भारत का समस्त साहित्य अपनी पुष्टि के लिए बराबर इसका आश्रय लेता रहा है। कदाचित् ही कोई ऐसा विषय हो, जहाँ प्रसंगानुसार मनु को उद्धृत न किया गया हो।

मनु के उद्धरण न केवल धर्मशास्त्र-विषयक ग्रन्थों में, अपितु अन्य विषयों के ग्रन्थों में भी बराबर पाए जाते हैं। वर्तमानकाल की छानबीन के परिणामस्वरूप निश्चित रूप से यह मालूम किया गया है कि इन उद्धरणों में पर्याप्त संख्या ऐसे पद्यों की है, जो मनु के नाम से अन्यत्र उद्धृत अवश्य हैं, पर वर्त्तमान मनुस्मृति ग्रन्थ में वे उपलब्ध नही हैं। मेरे सम्मुख इस समय निर्णयसागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित मनुस्मृति का दसवाँ संस्करण है, जो १९४६ ई. में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ के अन्त में ऐसे श्लोकों की एक सूची दी गई है, जो अन्य धर्मशास्त्र ग्रन्थों में मनु के नाम से उद्धृत हैं, पर वर्तमान मनुस्मृति में उपलब्ध नहीं हैं। ऐसे संगृहीत श्लोकों की संख्या साढ़े तीन सौ से भी अधिक है। इन श्लोकों का संग्रह केवल धर्मशास्त्र-विषयक ग्रन्थों में किया गया है। अन्य विषयों के ग्रन्थों में भी मनु के पर्याप्त उद्धरण मिलते हैं, और यह बहुत संभव है कि उनमें अनेक ऐसे हों, जो वर्त्तमान मनुस्मृति ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं हैं। मेरी जानकारी में इस ओर अभी तक किसी विद्वान् ने व्यवस्थित रूप में प्रयत्न नहीं किया।

पातञ्जल योगसूत्र के व्यास-भाष्य पर विज्ञान भिक्षु ने एक व्याख्या-ग्रन्थ लिखा है, जिसका नाम 'योग-वार्त्तिक' है। इस ग्रन्थ में मनु के श्लोक उद्धृत हैं। उनमें निम्नलिखित श्लोक वर्त्तमान मनुस्मृति में अनुपलब्ध हैं। श्लोक हैं-

तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्यैस्तैः कारणैः सह।
क्षेत्रज्ञाः समजायन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः।।

(साधन पाद, सूत्र १९ पर)

घोरेऽस्मिन् हतसंसारे नित्यं सततघातिनि
कदलीस्तम्भनिस्सारे संसारे सारमार्गणम्।।
यः करोति स सम्मूढो जलबुद्बुदसन्निभे।

(विभू., सू. १३ पर)

द्वितीय श्लोक का पूर्वार्द्ध अन्यत्र इस रूप में उद्धृत है-

घोरेऽस्मिन् हन्त संसारे नित्यं संसारघातिनि।

(विभू., सूत्र १५ पर)

इनके अतिरिक्त महाभारत में मनु के शताधिक श्लोक उद्धृत, उपलब्ध हैं। प्रायः उन सब ही स्थलों में उद्धरण अंश पूरा होने पर '**मनुः स्वाम्भुवोऽब्रवीत्**' इस प्रकार के वाक्य पाए जाते हैं। यह बहुत सम्भव है, उनमें से अनेक श्लोक वर्त्तमान मनुस्मृति ग्रन्थ में उपलब्ध न हों, पर मिलान करने पर यह निश्चित रूप से ज्ञात किया गया है, कि उनमें पाठ-भेद अनेक श्लोकों में हैं। यहाँ उन सब की सूची तो लेख कलेवर की व्यर्थ वृद्धि का ही कारण होगा, पर विशेष रूप से शान्ति-पर्व के प्रकरणों को इसके लिए देखा जा सकता है। श्रीमद्भागवत् (३।१।३६) की टीका में भी एक श्लोक मनु नाम से उद्धृत है, जो वर्त्तमान मनुस्मृति में अनुपलब्ध है।

अनुपलब्धि का कारण-

मनु के नाम से अन्यत्र उद्धृत अनेक श्लोक वर्तमान मनुस्मृति में क्यों उपलब्ध नहीं हैं? इस विषय का कोई निश्चित विवेचन मेरे दृष्टिगोचर नहीं हुआ। कहा जाता है कि प्राचीन काल में मनु का धर्मशास्त्र एक विशाल ग्रन्थ था, मनुस्मृति का वर्तमान संस्करण उसका संक्षेप अथवा सार है। कारण यह है कि 'वृद्धमनु' और 'बृहन्मनु' के नाम से लगभग दो सौ श्लोक विद्वानों ने संगृहीत किए हैं, जो वर्तमान संस्करण में उपलब्ध नहीं होते। इससे यह अनुमान होता है कि मानव धर्मशास्त्र का कोई पुराना बृहत्-

संस्करण रहा होगा। यह कहना मेरे लिए इस समय शक्य नहीं है कि 'वृद्धमनु' अथवा 'बृहन्मनु' के नाम से जो पद्य उद्धृत मिलते हैं, क्या उनमें कतिपय पद्य-चाहे वे न्यून हों या अधिक-वर्तमान संस्करण में उपलब्ध हैं, या नहीं? यदि उनमें से कुछ श्लोक भी वर्तमान मनु में मिलते हैं तो मनु के विभिन्न संस्करण-विषयक उपर्युक्त कथन कुछ दुर्बल हो जाता है। बृहन्मनु अभी तक उपलब्ध नहीं है, संभव है वर्तमान मनु से सुविधा के साथ काम चल जाने और पुराने 'मनु' के बृहत्-कलेवर के कारण जनता की उपेक्षा से वह कराल काल का शिकार हो चुका हो।

एक और बात है, वर्तमान मनुस्मृति का प्रारम्भिक वर्णन 'मानव-धर्मशास्त्र' के विभिन्न संस्करणों की सिद्धि में थोड़ी सहायता देता है। ग्रन्थ के आदि में यह प्रसंग प्रारम्भ होता है-

"महर्षियों ने स्वायम्भुव मनु के पास जाकर कहा-भगवन्, आप हमें सब वर्णों और आन्तर वर्णों के धर्मों के विषय में बतलाएं। आप ही इसके ज्ञाता हैं। मनु ने ऋषियों का आदर कर कहा, कि जो आप लोगों ने पूछा है, मैं कहूँगा, ध्यानपूर्वक सुनिए।"

यह प्रसंग प्रथम अध्याय के ५७ श्लोक तक चलता है। अगले श्लोकों में स्वयं मनु कहता है- "इस शास्त्र को बनाया तो ब्रह्मा ने और सर्वप्रथम उसने स्वयं मुझे ही विधिपूर्वक अध्ययन कराया, तथा मैंने (मनु ने) मरीचि आदि ऋषियों को पढ़ाया। अब आप लोगों को यह भृगु इस समस्त शास्त्र को सुनाएगा, क्योंकि यह अखिल शास्त्र भृगु मुनि ने मुझसे ही अध्ययन किया है। जब स्वयं मनु ने महर्षि भृगु को यह आदेश दिया, तब प्रसन्न हुए महर्षि भृगु ने उन समुपस्थित अन्य सब ऋषियों को कहा कि आप उस धर्मशास्त्र का मुझसे श्रवण करें।"

मनुस्मृति का यह वर्णन स्पष्ट करता है कि इस धर्मशास्त्र का मूल प्रवक्ता ब्रह्मा था। ब्रह्मा ने मनु को पढ़ाया और मनु ने महर्षि भृगु को, भृगु ने आगे अन्य ऋषियों को उपदेश दिया। व्याख्याकारों ने इस विषय में आशंका उठाई है कि जब धर्मशास्त्र का आदि प्रवक्ता ब्रह्मा है, तो यह मनु के नाम से प्रसिद्ध क्यों है? इसके कई समाधान टीकाकारों ने किये हैं। मेधातिथि का विचार है कि ब्रह्मा ने उपदेश मात्र दिया, मनु ने ग्रन्थ रचना की, इस कारण यह शास्त्र मनु नाम से प्रसिद्ध है। कुल्लूक ने यह प्रकट किया है कि ब्रह्मा ने एक लक्ष श्लोक परिमित धर्मशास्त्र का ग्रथन किया था, मनु ने उसका संक्षेप किया, इसलिये यह उसी के नाम से प्रसिद्ध है। इस युक्ति से यह भी संभव है कि आगे भृगु ने उसका भी संक्षेप किया हो, जो संभवत: वर्तमान मनुस्मृति के रूप में उपलब्ध है। नाम इसका वही रहा, पर भृगु भी इसके साथ बँधा हुआ है, यह विद्वज्जन-विदित है। इसलिये संभव है, 'वृद्धमनु' या 'बृहन्मनु' के नाम से जो श्लोक उद्धृत पाये जाते हैं और वर्तमान मनु में नहीं हैं, वे उन असंक्षिप्त संस्करणों में रहे हों।

उक्त कारण की अप्रामाणिकता-

इस विषय में एक बात गम्भीरतापूर्वक विचारणीय है कि मनुस्मृति के उक्त वर्णन के अनुसार ब्रह्मा, मनु और भृगु की गुरु-शिष्य की परम्परा में काल का व्यवधान नहीं रहा। ब्रह्मा से मनु ने और मनु से भृगु ने साक्षात् (बीच में बिना किसी अन्य परम्परा व्यवधान के) धर्म-शास्त्र का अध्ययन किया। भारतीय परम्परा तथा शास्त्रीय अवस्थाओं के अनुसार शास्त्रोपदेश की यह स्थिति आदि सर्ग अथवा अति प्राचीन काल में मानी जानी चाहिये। इस विचार की छाया में हम जब 'वृद्धमनु' और वर्तमान मनुस्मृति की परस्पर तुलना करते हैं, तो उनके पौर्वापर्य की वह स्थिति प्रमाण कोटि में नहीं आती।

'वृद्धमनु' के नाम से उद्धृत इस समय जितने श्लोक मेरे सम्मुख हैं, उनमें अनेक श्लोकों में रविवार आदि वारों का उल्लेख है। भारतीय ज्योतिष और अन्य प्रामाणिक आधारों पर यह बात मानी जाती है कि अति प्राचीन काल में इस प्रकार वारों का प्रयोग उपलब्ध नहीं है। इस आधार पर मैं इस समय वर्तमान मनुस्मृति के काल का निर्णय नहीं करना चाहता, वह जो भी रहे, पर इस तुलना से इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि 'वृद्धमनु' के नाम से उपलब्ध श्लोक वर्तमान मनुस्मृति के पूर्वकालवर्त्ती नहीं माने जाने चाहियें। जो विद्वान् वृद्धमनु के उन श्लोकों को देखना चाहें, वे निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित कुल्लूकभट्ट-टीका सहित मनुस्मृति के परिशिष्ट में देख सकते हैं। उदाहरण के लिये कतिपय श्लोक मैं यहाँ दे रहा हूँ-

संक्रान्त्यां भानुवारे च सप्तम्यां राहुदर्शने।
आरोग्यपुत्रमित्रार्थी न स्नायादुष्णवारिणा।।
पक्षादौ च रवौ षष्ठ्यां रिक्तायां च तथा तिथौ।
तैलेनाभ्यञ्जमानस्तु धनायुर्भ्यां प्रहीयते।।
इह जन्मकृतं पापमन्यजन्मकृतं च यत्।
अङ्गारकचतुर्दश्यां तर्पयंस्तद्व्यपोहति।।
श्रवणाधिधनिष्ठार्द्रा नागदैवतमस्तके।
यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते।।

इन श्लोकों में अनेक स्थलों पर रविवार और एक स्थल पर मंगलवार का प्रयोग हुआ है। इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि 'वृद्धमनु' के नाभ से उपलब्ध श्लोक वर्तमान मनुस्मृति के पूर्व की रचना है और इसी कारण यह भी प्रामाणिक नहीं है कि मनु में अनुपलब्ध, अन्यत्र मनु नाम से उद्धृत पद्य 'वृद्धमनु' अथवा 'बृहन्मनु' में रहे होंगे।

अनुपलब्धि का अन्य कारण-

यह बात सन्देह-रहित है कि मनुस्मृति के रचनाकाल से बराबर इसकी प्रामाणिकता का प्रभाव समस्त भारतीय साहित्य पर छाया रहा है और कोई भी लेखक अपने विचार की पुष्टि में मनु का प्रमाण देने के लिए सदा उत्सुक रहा है। जब मुद्रणकला का अभाव था, प्रायः सब विद्वान् अधीत ग्रन्थों को कण्ठाग्र कर लेने के लिये प्रयत्नशील रहते थे, यथासंभव ग्रन्थों का संग्रह भी रहता था। विविध ग्रन्थों के कण्ठाग्र पाठों में, विशेष रूप से पद्य-पाठों में अनेक बार स्मृति-पटल पर यह अङ्कित नहीं रहता कि यह पद्य अमुक ग्रन्थ का पाठ है, ऐसी स्थिति में किसी पद्य का प्रमाण रूप में अन्य ग्रन्थ के नाम पर उद्धृत हो जाना या कर दिया जाना संभव रहता है।

प्रतीत यह होता है कि मनु के नाम पर अनेक श्लोक इसी रीति पर उद्धृत किये जाते रहे हैं और यह क्रम अज्ञात काल से चल रहा है। ऐसे उद्धरणों में जहाँ मनु के श्लोक रहते थे, वहाँ अन्य ग्रन्थों के अथवा परम्परा द्वारा स्मृत श्लोक भी मनु के नाम से आ जाते थे। कालान्तर में ऐसे श्लोकों की पर्याप्त संख्या हो जाना अशक्य नहीं। सम्भव है, यह संख्या सहस्रों में पहुँची हो। कतिपय ऐसे श्लोकों को यथावसर मनु में देखने का प्रयत्न किसी अथवा किन्हीं विद्वानों ने किया और जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि इनमें अनेक श्लोक मनु में नहीं मिलते, तो यह सम्भव है, उस समय यह कल्पना की गई हो, कि ये वर्तमान मनुस्मृति में नहीं मिलते, तो अवश्य प्राचीन काल में मनु का कोई ऐसा विशाल ग्रन्थ रहा होगा जहाँ के ये श्लोक हैं, इस प्रकार एक 'वृद्धमनु' या 'बृहन्मनु' नाम की कल्पना कर ली गई तथा जितने मनु के श्लोक उन विद्वानों को वर्तमान मनुस्मृति में नहीं मिले, उनके साथ यह 'वृद्धमनु' या 'बृहन्मनु' लिख दिया गया। कारण यह है कि इन दोनों नामों की कल्पना अथवा इनका प्रयोग अधिक प्राचीन नहीं है। इस प्रकार मेरे विचार से श्लोक जो अन्यत्र उद्धृत हैं और वर्तमान मनु में नहीं मिलते, वस्तुतः वे मनु के श्लोक हैं ही नहीं। अज्ञात भ्रान्ति के कारण मनु के नाम पर लिखे जाते रहे, और उनमें से कतिपय श्लोकों को 'वृद्धमनु' या 'बृहन्मनु' के कल्पित नामों पर आरोपित कर दिया गया।

उक्त विचार में प्रमाण-

जो विचार ऊपर व्यक्त किया गया है, उसके अनेक आधार हैं। उनका थोड़ा दिग्दर्शन इस प्रकार है-

१. मध्यकाल में ऐसा प्रयत्न होता रहा है कि मनु नाम से अन्यत्र उद्धृत, मनु में अनुपलब्ध श्लोकों को मनुस्मृति की मूलभूत प्रति में प्रसंगानुसार मिश्रित कर दिया जाय। यह कहना शक्य नहीं कि वर्तमान मनुस्मृति में ऐसे कितने श्लोक सर्वथा घुल-मिल गये हैं, जिनका मूल मनु के साथ सात्म्य हो गया है, पर विद्वानों ने मूल परम्परा को कुछ न कुछ अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयत्न अवश्य किया। मेरे सम्मुख मनु का जो संस्करण है, उसमें प्रसंगानुसार १७० श्लोक ऐसे मुद्रित हैं जिनको विद्वानों ने प्रक्षिप्त स्वीकार किया है और उनको उसी रूप में मुद्रित किया। इनके अतिरिक्त इसी तरह के लगभग पाँच सौ वे श्लोक हैं, जो मनु, वृद्धमनु और बृहन्मनु के नाम से विभिन्न ग्रन्थों में उल्लिखित हैं पर वर्तमान मनु की तत्तत्काल की पाण्डुलिपियों में लिखे नहीं गये।

२. प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जब कोई पाठ अपनी स्मृति के आधार पर कहीं उद्धृत किया जाता है तो कभी-कभी उस पाठ में कोई शब्द विस्मृत हो जाता है, उद्धर्त्ता उसे स्वयं किसी समानार्थ पद द्वारा पूरा कर देता है।

कभी-कभी कई पद अन्य रूप में स्मृत हो आते हैं, उन्हें भी वैसा ही लिख दिया जाता है। जब कालान्तर में उसी पाठ को चाहे वह गद्यरूप हो या पद्यरूप, दोनों स्थलों से देखा जाता है, तो उसमें कुछ पाठ-भेद प्रतीत होता है। ऐसे सामान्य पाठभेद के श्लोकों को भी मनु के अनुपलब्ध श्लोकों की सूची में रखा गया है, उदाहरण के लिये देखें- मनु (२/१०२) का श्लोक। श्लोक है-

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेन्नैशमेनो व्यपोहति।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्।।

इसी आशय को किसी विद्वान् ने मनु के नाम से इस प्रकार प्रकट किया है-

यदह्ना कुरुते पापं कर्मणा मनसा गिरा।
आसीनः पश्चिमां सन्ध्यां प्राणायामैर्निहन्ति तैः।।

स्पष्ट है, पहले श्लोक के भावांश को अपनी रचना द्वारा प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है, पर उसके साथ नाम मनु का ही जोड़ दिया गया है। साधारण पाठ-भेद के लिये देखिये, मनु (२/१०३) का श्लोक है-

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः।।

साधारण पाठभेद से यह श्लोक स्मृति-रत्नाकर में इस प्रकार उद्धृत है-

नोपतिष्ठेत यः पूर्वामुपास्ते न च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्मात्साधुकर्मणः।।

निश्चित है, यह श्लोक मनु के मूल श्लोक की भावना से उद्धृत किया गया, पर स्मृति के आधार पर उद्धृत होने से कतिपय पदों का विपर्यास हो गया। यह श्लोक मनु के अनुपलब्ध श्लोकों की सूची में निर्दिष्ट है।

३. अनेक प्रसंगों में उद्धर्त्ता को स्वयं यह निश्चय नहीं रहा है कि अमुक श्लोक-जो उसे याद है और वह उद्धृत कर रहा है, मनु का है अथवा अन्य किसी शास्त्रकार का, तब भी उद्धर्त्ताओं ने उद्धरण-प्रतीकों में मनु का नाम-निर्देश कर दिया है। उनके सन्देह की भावना उद्धरण की अवतार-प्रतीकों से स्पष्ट होती है। विज्ञान-भिक्षु द्वारा योगवार्त्तिक में उद्धृत जिन दो श्लोकों का इस लेख के आदि में जिक्र आया है, उनकी अवतरणिका भिक्षु ने इस प्रकार दी है-

इति मन्वादिवाक्यैः (साधनपाद, सूत्र १९)
'तदुक्तं मन्वादौ' (विभूतिपाद, सूत्र १३)

यहाँ 'मनु' के साथ 'आदि' पद लगने से यह निश्चय होता है कि भिक्षु को इस विषय में सन्देह था कि ये श्लोक मनु के हैं अथवा अन्य किसी आचार्य के।

इन आधारों पर स्पष्टतया यह परिणाम प्रकट होता है कि मनु के नाम के मनुस्मृति में अनुपलब्ध श्लोक मनु के नहीं हैं, वे किन्हीं भ्रान्तियों के वश मनु के नाम पर आरोपित कर दिये गए हैं, इससे यह बात भी कल्पनामात्र रह जाती है कि अतिप्राचीन काल में मनु का कोई अन्य विस्तृत धर्मशास्त्र था एवं 'बृहन्मनु' नाम के कोई अन्य ग्रन्थ रहे हैं। विद्वान् इस विषय पर विचार करने का अनुग्रह करें।

परोपकारी के पाठकों से निवेदन

प्रिय पाठक गण, सादर नमस्ते!

आप जैसे सहृदय पाठकों से निवेदन है कि आपकी प्रिय पत्रिका हम आपकी सेवा में निरन्तर प्रेषित कर रहे हैं ताकि युगनिर्माता महर्षि दयानन्द सरस्वती के लोकोपकारी एवं धार्मिक सन्देश जन-जन तक पहुँच सकें तथा उन कल्याणकारी विचारों को पढ़कर प्रत्येक पाठक सदाचारी, धर्मप्रेमी एवं वैदिक विचारधारा का अनुयायी बनकर वर्तमान में प्रचलित पाखण्ड, अन्धविश्वास को छोड़कर बुद्धिजीवी, तार्किक एवं सत्यान्वेषी बनकर समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुसंस्कारों से मुक्त रहे।

सज्जनो, हम इस पत्रिका की लाभ-हानि की बात नहीं कर रहे। इस निवेदन में केवल इतना जान लें कि पैसा भी किसी संस्था के प्रचार के लिए आवश्यक है। बहुत से महानुभावों का वार्षिक शुल्क हमें निरन्तर प्राप्त हो रहा है, परन्तु कुछ सदस्यों का शुल्क आता ही नहीं है, वर्षों तक रुका रहता है, पुनरपि उन्हें पत्रिका भेजी ही जाती है। अतः ऐसे सज्जनों से निवेदन है कि परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सदस्यता की रकम जमा कराकर इस पावन पत्रिका के निरन्तर प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर इस धर्म के स्रोत को जारी रखने की कृपा करें।

आशा है आप महानुभाव वार्षिक शुल्क भिजवाकर हमारा उत्साह निरन्तर बढ़ाते रहेंगे।

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ५ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

IFSC - SBIN0007959

प्राणोपासना-९

तपेन्द्र वेदालंकार आई.ए.एस. (से. नि.)

महर्षि दयानन्द जी महाराज ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासना विषय में लिखते हैं, ''सब पदार्थों की सिद्धि का मुख्य हेतु जो प्राण है उसको प्राणायाम की रीति से अत्यन्त प्रीति के साथ परमात्मा में युक्त करते हैं। इसी कारण वे लोग मोक्ष को प्राप्त होके सदा आनन्द में रहते हैं।'' उपासना प्राणों में की जानी है। प्राण कोई हवा आदि पदार्थ नहीं है। बाह्यप्राण सूर्य की रश्मियों द्वारा आँखों के माध्यम से प्राप्त होकर हृदय तक पहुँचते हैं तथा भुक्त जल का सूक्ष्मतम भाग अन्त:प्राण ऊपर उठकर हृदय तक पहुँचता है, हृदय प्राणनाड़ियों का संकुल है, यह रक्त प्रेषण करने वाला उपकरण नहीं है। प्राण पाँच भागों में विभक्त होकर शरीर में कार्य सम्पादन करते हैं। प्राणों की उदानवृत्ति होने पर आत्म-दर्शन होता है। प्राणों की उदानवृत्ति प्राणायाम से होती है, उसके लिए प्रथम बाह्यवृत्ति प्राणायाम का अभ्यास आवश्यक है।

चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है तथा चित्त की वृत्तियाँ प्राणायाम से निरुद्ध होती हैं। महर्षि **भाष्यभूमिका** में ही '**प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य**' सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखते हैं, ''इसी प्रकार वारंवार अभ्यास करने से प्राण उपासक के वश में हो जाता है और प्राण के स्थिर होने से मन, मन के स्थिर होने से आत्मा भी स्थिर हो जाता है।''

उपनिषद् में भी आया है कि मन प्राण के बन्धन वाला है। प्राण का वश में होना, स्थिर होना-यह प्राण की उदानवृत्ति से हो सकता है। **योगदर्शन** में बताया है कि प्राणायाम से आत्मा का अज्ञान नष्ट होता है तथा मन में धारणा की योग्यता आती है। ध्यान व समाधि के लिए धारणा की प्राप्ति आवश्यक है, अज्ञान नष्ट करने तथा धारणा-सिद्धि के लिए प्राणायाम आवश्यक है।

ईश्वर सत् चित् आनन्द है, आत्मा सत् व चित् है, प्रकृति सत् है। ईश्वर व आत्मा को छोड़कर संसार में जितने भी पदार्थ हैं वे सब प्रकृति से-सत्त्व, रज, तम से बने हैं, मन इन्द्रियाँ आदि तथा संसार में दिखने वाले हवा, पानी, वृक्ष, वनस्पति, घर, गाड़ी आदि सत्त्व, रज व तम के विभिन्न अनुपातों के परिणाम हैं। ईश्वर सृष्टि की रचना, पालन, प्रलय करता है तथा जीवों के कर्मानुसार फल देता है। मन, इन्द्रिय, शरीर से संयुक्त होकर आत्मा इस संसार के उपलब्ध भोगों को भोगता है, पाप-पुण्य संचित करता है, अच्छा-बुरा फल प्राप्त करता है। बिना शरीर आत्मा संसार के किसी भोग को नहीं भोग सकता तथा शरीर यदि है तो उसके साथ सुख-दु:ख अवश्य रहेगा। प्रकृति के भोगों को भोगने के कारण जीव सुख-दु:ख, पाप-पुण्य फलत: जन्म-मरण के चक्कर में पड़ जाता है अर्थात् प्रकृति का भोग सुख-दु:ख का कारण है।

भोगों को भोगने के लिए मन व इन्द्रियाँ आदि परमात्मा ने दिये हैं, साथ ही प्रकृति के विभिन्न भोग भी दिये हैं। उपनिषद् अनुसार इन्द्रियों को परमात्मा ने बाहर की ओर देखने वाला बनाया है, इसलिए वे बाह्य विषयों की ओर भागती हैं। जब तक इन्द्रियाँ बाह्य विषयों की ओर भागती रहेंगी, तब तक विषयों का सुख-दु:ख लेती रहेंगी। विषयों की ओर कैसे जाती हैं इन्द्रियाँ? इन्द्रियों ने किसी विषय को देखा, मन को बताया, मन से आत्मा के ज्ञान में आया। दूसरा-पूर्व भोग की स्मृति के कारण आत्मा ने किसी विषय को चाहा, मन को प्रेरणा दी, मन ने इन्द्रियों को, इन्द्रियाँ विषय तक पहुँच गयीं।

अब इसे रोकने के लिए क्या करना होगा, जिससे १. इन्द्रियाँ विषयों की ओर न दौड़ें, २. मन विषयों की स्मृति न उठाये। विषयों की निस्सारता समझनी होगी, विषय दु:ख देने वाले हैं, सुख देने वाले विषयों के सुख में भी दु:ख मिला हुआ है, यह जानना होगा। यह कैसे जानेंगे? ज्ञान से, जो वस्तु जैसी है, उसे वैसा ही समझना होगा। अविद्या का, अज्ञान का नाश करना होगा और अज्ञान के नाश का एक महत्त्वपूर्ण उपाय योगदर्शन में प्राणायाम बताया है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि के पालन में अभ्यासी को वितर्क आने लगें, उनमें मन न लगे

तो योगदर्शन अनुसार प्रतिपक्ष भावना करनी चाहिये। मन जिस कार्य को करने में लाभ समझता है उसे करने को उद्यत होता है। जब उसका उल्टा सोचने लगेंगे, उस कार्य के अवगुण देखेंगे, उसमें नुकसान देखेंगे तो मन उस कार्य की ओर नहीं जायेगा। बुराई में बुराई देखना ज्ञान है, अच्छाई में अच्छाई देखना ज्ञान है तथा इस ज्ञान से मन को बुराई की ओर जाने से रोका जाता है।

मान लो मन को २५ सालों से अभ्यास पड़ा हुआ है, उस बुरे कार्य को करने का, तो क्या ज्ञान होते ही छूट जावेगा? यदि ज्ञान पूर्ण है तो पूर्ण वैराग्य होगा तथा उस कार्य को व्यक्ति नहीं करेगा। यदि ज्ञान पूर्ण नहीं तो ज्ञान को बार-बार दोहराना पड़ेगा तथा साथ ही साथ मन का जो उस त्रिषय में जाने का अभ्यास है उसे बदलना होगा, मन को विषय में नहीं जाने का बार-बार अभ्यास करना होगा। इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य दोनों पर काम करना होगा।

मुण्डकोपनिषद् कहता है-

कामान्यः कामयते मन्यमानः स कामाभिर्जायते तत्र तत्र।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः।।

'जो व्यक्ति कामनाओं को ही सब कुछ मान बैठा है, उन्हीं की आराधना करता है, वह उन कामनाओं से भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न होता है। जिस व्यक्ति के लिए कामनाएँ पर्याप्त हो चुकी हैं, बहुत हो चुकी हैं, अब उनमें वह नहीं फंसा हुआ, वह कृतात्मा हो जाता है, उसका ध्यान 'आत्मा' में लग जाता है और उसकी सब कामनाएँ यहीं लीन हो जाती हैं। कामनाएँ बनी रहें, लीन न हों, इसीलिए तो भिन्न-भिन्न योनियों का द्वार देखना पड़ता है[१]।'

मुख्य बात यह हुई कि बाहर की ओर जाती हुई, संसार के विषयों की ओर जाती हुई इन्द्रियों को, मन को रोकना है। इसी से मन एकाग्र होगा, इसी से आगे की प्रगति का रास्ता मिलेगा। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं व एक मन है, इन्हें रोकना है विषयों से। किसी को हाथ हिला-हिला कर बात करने की आदत है, उसे कहा जाये कि आप हाथ घुटने पर रख लें तथा उठायें नहीं, हिलायें नहीं। किसी को पैर हिलाने की आदत है, उसे कहा जाय, पालथी लगालो, पैर हिलाना नहीं। किसी को तेज-तेज, जल्दी-जल्दी बोलने की आदत है, उसे कहा जाय, मुँह मत खोलो, चुप बैठ जाओ। ऐसा करने से इन इन्द्रियों की चंचलता कम होगी फलतः मन पर भी उतना ही अंकुश लगेगा। अब विचार करें कि आसन में प्राथमिक रूप से क्या करते हैं? पालथी लगाते हैं, हाथ घुटनों पर रखते हैं, मुँह बन्द रख बोलते नहीं। दूसरी दो कर्मेन्द्रियों से भी उस समय कोई कुचेष्टा नहीं कर रहे होते। कर्मेन्द्रियों की चंचलता दूर करने, स्थिरता लाने का काम हो रहा होता है।

आसन के समय रसना से कुछ खा नहीं रहे, स्पर्श सुख भी कम है, क्योंकि हवा कपड़े आदि का ही स्पर्श है, नासिका से कोई गन्ध जानबूझकर नहीं सूंघ रहे, कानों से जानबूझकर कोई ध्वनि नहीं सुन रहे, नेत्र भी अधखुले या बन्द हैं, उनसे कुछ देख नहीं रहे- तो पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को पर्याप्त स्थिर कर लिया। कानों से कुछ आवाज सुनी जावेगी, कपड़े आदि का स्पर्श पता चलेगा, गन्ध भी यदि उस स्थान पर है तो कुछ अनुभव हो सकती है, परन्तु सोच-समझकर आसन के समय पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को विषयों में नहीं लगाया जा रहा, क्योंकि आसन के स्थान पर विषयों के आलम्बन नहीं हैं या कम हैं तथा उस समय लक्ष्य आसन लगाना है।

जब मन कहीं अन्य लगा होता है तो कोई सामने से निकल जावे तो पता नहीं चलता। कोई आवाज दे तो सुनता नहीं। कोई गन्ध हो तो ध्यान उधर नहीं जाता। आसन में अनन्तसमापत्ति जब की जाती है, तब क्रमशः अभ्यास करते हुए अनन्त आकाश में सामने, दायें, पीछे, बायें, नीचे व ऊपर की दिशा में मन को प्रेषित किया जाता है, तो मन अनन्त तक जाता हुआ अन्त नहीं पाता व मन को उस समय सुनने, स्पर्श करने, देखने, चखने, सूंघने का ध्यान ही नहीं रहता, मन कुछ स्थिर हो जाता है। क्योंकि अनन्तसमापत्ति में अभ्यासी मन को एक काम दे देता है। जितना-जितना अनन्तसमाप्ति का अभ्यास होगा, अभ्यासी को आसन की सिद्धि उतनी-उतनी ही होती चली जायेगी। आसन का अभिप्राय केवल बैठना ही नहीं है अपितु इन्द्रियों व मन का कुछ स्थिरता की ओर बढ़ना है।

आसन की सिद्धि के बाद ही प्राणायाम करने का विधान है, योगदर्शन में 'तस्मिन् सति' शब्द आये हैं। आसन से कुछ स्थिरता को प्राप्त करके जब अभ्यासी

प्राणायाम करता है तो प्राणायाम का फल शीघ्र प्राप्त होता है। जब व्यक्ति क्रोधादि आवेग में होता है तो श्वास की गति तीव्र हो जाती है, उस समय श्वास को धीरे-धीरे लिया जावे, सामान्य से भी कम गति से लिया जावे तो क्रोधादि का विकार कम हो जावेगा तथा कुछ काल पश्चात् समाप्त हो जावेगा। जब प्राणायाम में भी प्रथम क्रिया 'सहज श्वास'[२] का अभ्यास करते हैं तो मन की तेजी कम होती जाती है। दूसरी क्रिया थी श्वास को नासिका के बायीं ओर से लेना व दायीं ओर से छोड़ना, दायीं ओर से लेना व बायीं ओर से छोड़ना[३]। वह भी बिना हाथ लगाये। इससे मन की एकाग्रता के साथ-साथ प्राण-नाड़ियों की शुद्धि होती है। कुछ अभ्यासियों को लगेगा कि बिना हाथ लगाये एक ओर से श्वास कैसे आ-जा सकता है? परन्तु यह हो सकता है, होता है। यदि मन की यथेष्ट एकाग्रता है तो हो जावेगा। इस क्रिया का अभ्यास लाभदायी है। नहीं हो पा रहा है तो '**स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः**' सूत्र का चिन्तन कर उस अनुसार अभ्यास किया जाना चाहिये। बाह्यवृत्ति प्राणायाम से पूर्व इस क्रिया का अभ्यास फलदायी है।

बाह्यवृत्ति प्राणायाम में धैर्य्य की आवश्यकता है। धैर्य्य की आवश्यकता तो अभ्यासी को पूरी साधना में ही है। कम समय में साधना में गति हो सकती है, परन्तु यह मन की स्थिति पर निर्भर करता है। योगदर्शन में आया है, '**तीव्रसंवेगानामासन्नः**'। समाधि की सिद्धि तीव्र संवेग वाले योगियों को शीघ्र होती है। यह सिद्धान्त उच्च स्थिति प्राप्त योगियों के साथ-साथ अभ्यासियों के लिए भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। मन की स्थिति ठीक नहीं तो साधना में गति कैसे होगी? मन की स्थिति को सम्यक् करने में समय तो लगेगा ही। यदि वर्षों तक मन को बाह्य विषयों में जाने का अभ्यास करा दिया है तो मन को स्थिर करने के लिए कुछ समय तो चाहिये। यहाँ श्रद्धा अभ्यासी को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करेगी। आप्तों पर पूर्ण विश्वास, शास्त्रों की कही बातों पर पूर्ण आस्था यदि होगी तो श्रद्धा बनी रहेगी। आस्था होगी उन शास्त्रों का, आप्त प्रमाणों का बार-बार स्वाध्याय करने से, उनकी आवृत्ति करने से।

योगदर्शन में '**स्वाध्याय**' का ग्रहण क्रियायोग में किया गया है। व्यास भाष्य में आया है,

स्वाध्यायः प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राध्ययनं वा।

प्रणव आदि का जप करना तथा मोक्षविषयक शास्त्रों का अध्ययन करना स्वाध्याय है। इससे शास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा बढ़ेगी, मन में अविश्वास की भावना नहीं आयेगी तथा अभ्यासी अपने साधना-पथ पर निरन्तर गतिपूर्वक बढ़ता चला जावेगा। मन बार-बार जिस काम को करता है, वह उसे अच्छा लगने लगता है। कोई बार-बार सिनेमा देखे तो नया सिनेमा आते ही उससे बिना देखे रुका नहीं जाता। कोई समाचारों में रुचि रखता है, रोज समाचार सुनता है तो भूल जाता है कि वह अभ्यासी है तथा टी.वी. देखना उसके लिए हानिकारक है, साधना में लाभदायक नहीं। बिना देखे उसे परेशानी होने लगती है, समय पर अवश्य देखता है। चोर जेल से छूटते ही पुनः चोरी कर लेता है, क्योंकि उसके मन को अभ्यास हो गया। ऐसी स्थिति में ज्ञान पर बुरी लत का अभ्यास हावी हो जाता है, व्यक्ति जानते हुए भी गलत कार्य करता रहता है। यही सिद्धान्त अच्छाई पर भी लागू होगा। स्वाध्याय-स्वाध्याय-स्वाध्याय-दिन-रात साधना के अतिरिक्त समय में स्वाध्याय करते रहने से मन स्वाध्याय में, शास्त्रों में व प्रणव जपादि में लगने लगेगा। बार-बार सिद्धान्तों के पढ़ने से मन को वे सिद्धान्त अच्छे लगने लगेंगे तथा सिद्धान्तों पर आस्था बढ़ेगी, श्रद्धा हो जावेगी। यही श्रद्धा माता के समान योगी की रक्षा करती है ऐसा 'योगदर्शन' में कहा है।

दूसरी बात आयी थी कि मन पूर्व की स्मृति न उठाये तथा पूर्व स्मृति के आधार पर राग द्वेषादि के कारण जो अवांछित भाव मन में आकर चंचलता, अस्थिरता उत्पन्न कर रहे हैं, वे न आयें, मन एकाग्र बना रहे। व्यास भाष्य में आया है,

प्राणायामानभ्यस्तोऽस्य योगिनः
क्षीयते विवेकज्ञानावरणीयं कर्म।

इसमें कर्म शब्द आया है। कुछ विद्वानों ने अशुभ संस्कारों को आवरण माना है, कुछ ने अज्ञान को आवरण माना है तथा अशुभ संस्कार व भावी अशुभ कर्म क्षीण होना माना है, कुछ मानते हैं। पर यह तो स्पष्ट है कि प्राणायाम से अशुभ संस्कार क्षीण होते हैं। इन संस्कारों के

कारण ही स्मृति आती है। अतः संस्कारों का क्षीण होना अभ्यासी के लिए बहुत जरूरी है। इन संस्कारों से ही पुनः व्यक्ति आलम्बन पाते ही बुरे कर्म कर लेता है, उससे पुनः संस्कार बन जाते हैं और कर्म व संस्कारों का यह चक्र चलता जाता है। आत्मा जन्म-मरण के चक्कर से निकल नहीं पाता। वैसे भी अभ्यास के समय स्मृति के कारण मन इधर-उधर डोलता है, उसको स्थिर करना अभ्यासी के लिए बड़ी चुनौती होता है। प्राणायाम का अभ्यास इन संस्कारों को क्षीण करने का प्रभावी उपाय है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में आया है, जैसे घोड़ों को वश में किया जाता है वैसे अप्रमत्त होकर-सावधानीपूर्वक प्राणायाम से मन के घोड़े को वश में करे।

प्राणान्प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत्।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहनेनं
विज्ञन्मनो धारयेताप्रयत्तः।।२१९।।

व्यास जी महाराज उल्लेख करते हैं,

तपो न परं प्राणायामात् ततोविशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य।

प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं है, प्राणायाम से मलों की शुद्धि होती है तथा ज्ञान की दीप्ति होती है।

इन्द्रियाँ विषयों की ओर न जावें, मन स्मृति उठाकर इन्द्रियों को विषयों की ओर प्रेषित न करे, इन्द्रियाँ व मन सांसारिक विषयों से विरत हो जावें, यही लक्ष्य है। आसन व प्राणायाम का अभ्यास इसके लिए महत्त्वपूर्ण साधन है। पूर्ण प्रक्रिया अपनाकर, समझकर, आस्था रखकर निरन्तरता से अभ्यास किये जाने की आवश्यकता है। सफलता योगियों को मिलती रही है, आगे भी अभ्यासियों को मिलेगी। कठोपनिषद् उद्घोष करती है-

यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते।।

"जो विज्ञान वाला है, जिसका आत्मा मन के साथ नहीं, परन्तु मन आत्मा के साथ लगा है, जो पवित्र विचारों को सोचता है, वह उस उच्च पद को प्राप्त कर लेता है जिससे फिर उत्पन्न नहीं होता।[४]" आवश्यकता है कि सांसारिक विषयों को जो प्राथमिकता हमने अपने जीवन में दे दी है, उसे उल्टा कर दिया जावे, विषयों को प्राथमिकता से हटा दिया जावे। इन्द्रियों को बाहर के विषयों से अन्दर की ओर मोड़ दिया जावे। साधना को प्रमुखता दी जावे, उसी के लिए स्वाध्याय किया जावे, उसी के लिए अभ्यास किया जावे। चिन्तन, वाचन, कर्म सभी साधना के लक्ष्य को ध्यान में रखकर किये जावें। जो वानप्रस्थ आश्रमी हैं, जिनकी आयु वृद्धावस्था की ओर जा रही है, उनको तो एकतरफा होकर साधनारत हो जाना चाहिये। सांसारिकता व साधना दोनों को थोड़ा-थोड़ा करने से तो किसी में भी सन्तुष्टि न मिलेगी, न ही प्रवीणता प्राप्त होगी। थोड़ा मीठा, थोड़ा कडुवा मिलकर मीठा नहीं बनता। अतः अभ्यासीगण! सांसारिक विषयों की मृगतृष्णा से बाहर निकल कर मुक्ति गान प्रारम्भ कर दो, अभी से प्रारम्भ कर दो।

श्री प्रेमभूषण जी महाराज एक गीत गाते हैं-

शान्ति और सन्तोष छोड़ मृगतृष्णा मत पालो।
बुन मकड़ी सा जाल स्वयं को कैद ना कर डालो।।
आँखों की निर्मल सरिता को गन्दी नहीं करो।
लोभ मोह के छल-छन्दों में बन्दी नहीं करो।
मुक्त धरा पर मुक्त गगन में मुक्ति गान गा लो...
बुन मकड़ी सा जाल स्वयं को कैद न कर डालो।।

टिप्पणी

१. एकादशोपनिषद् - डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
२. व ३. प्राणोपासना ७-८
४. एकादशोपनिषद् - डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ऋषि दयानन्द ने कहा था

सत्य और असत्य क्या है?

जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह-वह सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है। जो-जो सृष्टिक्रम से अनुकूल वह-वह सत्य और जो-जो सृष्टिक्रम से विरुद्ध है वह-वह सब असत्य है, जैसे कोई कहे कि बिना माता-पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है। **(स. प्र. स. ३)**

समीक्षा- संकल्प पाठ का आवश्यक संज्ञान

शिवनारायण उपाध्याय

माह फरवरी २०१८ के वैदिक संसार में 'संकल्प पाठ का आवश्यक संज्ञान' शीर्षक से डॉ. दार्शनेय लोकेश ने एक लेख प्रकाशित करवाया है। यह संकल्पपाठ की महर्षि दयानन्द प्रोक्त गणना को स्वीकार न कर उसे अशुद्ध ठहराते हैं। उस लेख की समीक्षा ही इस लेख का विषय है। -सम्पादक

इन्दौर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'वैदिक संसार' माह फरवरी २०१८ में आर्यसमाज के प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री दार्शनेय लोकेश का लेख 'संकल्प पाठ का आवश्यक संज्ञान' लेख पढ़ने को मिला। आपने अपना लेख केरल के एक गुरुकुल के आचार्य श्री के. एम. राजन के पत्र से प्रारम्भ किया है। पत्र के अनुसार वे चाहते हैं कि देश की समस्त आर्यसमाजों में सिद्धान्त सम्मत एक ही संकल्प पाठ होना चाहिए।

आचार्य के. एम. राजन ने ऋषि उद्यान अजमेर के और दर्शन योग महाविद्यालय रोजड़, गुजरात के दैनिक यज्ञों में चल रहे संकल्प पाठों की प्रतियां भी दार्शनेय लोकेश को भेजकर लिखा था-

I suggest Acharya Darshney Lokesh to make a correct format of Sankalp Paath and make it for circulation among Arya Scholars for making correction if any आचार्य जी को यह सुझाव अच्छा लगा।

श्री मोहन कृति आर्य पत्रकम् के मुखपृष्ठ पर संकल्प पाठ प्रकाशित भी होता है। वास्तव में ऋषि उद्यान, अजमेर तथा रोजड़ महाविद्यालय के संकल्प पाठों में समानता है। दोनों सृष्टिगान १९६०८५३११८ वर्ष स्वीकार करते हैं। अजमेर में गद्यात्मक रूप में 'अंकानाम वामतोगति के अनुसार' **अष्टैकेन्दुगुणभूतवसुखर्तुनवेन्दौ सृष्टिवत्सरे वेदर्षिखनेत्रे वैक्रमाब्दे काकालाङ्कचन्द्रे...** कहकर पढ़ी जा रही है। जिससे १९६०८५३११८ की गिनती बनती है। लेखक का कहना है कि अब सांस्कृतिक महत्त्व की बात यह है कि १९६०८५३११८ गिनती की इस गणना को सृष्ट्यादि के सम्बन्ध में गलत नहीं कह सकते और सही ये है नहीं। मेरा लेखक से कहना है कि जब यह गलत नहीं कही जा सकती तो फिर आप यह कैसे कहते हैं कि यह सही नहीं है। लेखक स्पष्ट क्यों नहीं करते कि यह गलत है। फिर कहते हैं कि इसको भी साथ ही साथ स्पष्ट करते चलें। फिर लेखक प्रहर और परार्द्ध का अलग-अलग महत्त्व मानता है। लेखक लिखता है 'जीवेम् शरदः शतम्' के अनुसार ब्रह्मा की आयु १०० वर्ष की कही गई है। अब प्रहर की बात करेंगे तो ब्रह्मा के वर्तमान भोग्य भाव की बात हम कर रहे होते हैं। वर्तमान दिनमान ब्रह्मा की वर्तमान आयु के अन्तर्गत का है। यह उनके ५१ वें वर्ष का प्रथम दिनमान है। लेखक के अनुसार इसके सन्दर्भ मन्त्र अथर्ववेद ८.२.२१, गीता ८.१७ और मनुस्मृति १/७५ तथा विष्णु धर्मोत्तर पुराण आदि के प्रमाण हैं। लेखक का यह सब अनर्गल प्रलाप है। आओ। हम अथर्ववेद, गीता और मनुस्मृति को देखते हैं।

शतंतेऽयुतं हायनान् द्वे युगेत्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेनु मन्यन्तामहृणीयमानाः।।

अथर्व. ८.२.२१

इस मन्त्र में तो मनुष्य के उपकार के लिए सृष्टि रचना तथा काल चक्र का वर्णन है। गीता ८.१७ में कहा गया है-

सहस्त्र युगपर्यन्तमहर्यद् ब्राह्मणो विदुः।
रात्रि युग सहस्त्रान्तां तेऽहोरात्र विदो जनाः।

इस श्लोक में ब्रह्मा की एक दिन की अवधि १००० चतुर्युगी तथा ब्रह्मा की एक रात्रि भी १००० चतुर्युगी मानी गई है।

मनु १.७५ में कहा गया है-

मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया।
आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः।।

इसका अर्थ है परमात्मा महत्त्व की दृष्टि को विकारी भाव में लाता है। अहंकार के रूप में यह विकृत करता है फिर उसी के विकारी अंश से प्रेरित हुआ हुआ आकाश उत्पन्न होता है। उस आकाश का गुण शब्द को मानते हैं।

श्रीमान् इन तीनों स्थानों पर कहीं भी वर्णन नहीं है कि प्रत्येक मन्वन्तर के पूर्व तथा चौदहवें मन्वन्तर के पश्चात् भी सन्धि के रूप में १७२८००० वर्ष जोड़ने चाहिए जिससे कि ब्रह्मा का वर्तमान दिनमान १९७२९४९११९ वर्ष बन जाए। भारत के स्वाधीन होने के बाद जो कैलेन्डर रिफॉर्म कमेटी बनी थी उसके अध्यक्ष मेघनाद साहा थे। वे महात्मा गाँधी और पं. जवाहरलाल नेहरू के कट्टर विरोधी थे तथा कलकत्ता से कांग्रेस के प्रत्याशी को हराकर सांसद बने थे। वे विक्रम् संवत् को कैसे मान्यता देते जिसके वर्ष में ३५१ दिन होते हैं? क्या कर्मचारियों को ३५१ दिन कार्य के बदले ३६५ दिन का वेतन देते और क्या ३२ माह बाद ही वर्ष में १२ के स्थान पर १३ माह का वेतन देते। कैलेण्डर में ३६५ दिन का वर्ष होना आवश्यक होता है। यही कारण था कि विक्रम् संवत् को कैलेण्डर में स्वीकार न करके शक संवत् को स्वीकार किया गया। शक संवत् में वर्ष में ३६५ दिन होते हैं और आपने भी अपने पंचांग में ३६५ दिन का वर्ष माना है।

लेखक फिर सृष्टि की आयु १९६०८५३११९ को भ्रम पूरक बताता है। अन्त में लेखक १९७२९४९११९ वर्ष सृष्टि की आयु मानकर एक संकल्प पाठ तैयार करता है। वास्तव में यह पाठ मानने योग्य नहीं है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने पहली संस्कार विधि विक्रम् संवत् १९३२ में प्रकाशित की थी और उनकी मृत्यु विक्रम संवत् १९४० में हुई। इस मध्य कई संस्कार हुए होंगे। इन आठ साल के मध्य में यदि स्वामीजी को लगता कि सृष्टि उत्पत्ति की गणना में कोई त्रुटि हुई है तो वे निश्चित रूप से संकल्प पाठ में परिवर्तन कर देते। शास्त्रार्थों में किसी पौराणिक विद्वान् ने भी कभी उन्हें यह नहीं कहा कि आपकी काल गणना असत्य है। अत: हमें सृष्टि की आयु १९६०८५३११९ वर्ष मानकर ही संकल्प पाठ करना उचित है। इतिशम्।

एक आहुति
अपने आचार्य के लिए........

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गौशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

- मन्त्री

सोशल मीडिया की सकारात्मक एवं नकारात्मक दिशा

अखिलेश आर्येन्दु

भारत में आजादी से पहले का वह दौर, जब उन्नीसवीं सदी में औपनिवेशिक हुकूमत के खिलाफ असंतोष की अन्तर्विरोधी छाया में हमारे सार्वजनिक जीवन की रूपरेखा बन रही थी। इस प्रक्रिया के तहत मीडिया दो ध्रुवों में बँट गया। उसका एक मजबूत हिस्सा औपनिवेशिक शासन का समर्थक था तो दूसरा हिस्सा जो उन क्रान्तिकारियों का था जिसमें भारत की जनता समर्थक की भूमिका में थी- स्वन्तन्त्रता का झंडा बुलन्द करने वालों का था। राष्ट्रवाद या भारतीयता बनाम उपनिवेशवाद का यह दौर १९४७ तक चला। इस दौर में अंग्रेजी के साथ-साथ भारतीय पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की एक समृद्ध परम्परा दिखाई देती है। इसी समय अंग्रेजी शासन के नियन्त्रण में रेडियो प्रसारण का प्रारम्भ हुआ। मीडिया आज के दौर में जिन्दगी का सबसे जरूरी हिस्सा बन गया है। बिना मीडिया के मानव सभ्यता का विकास संभव नहीं है, ऐसा माना जाने लगा है। इसमें सोशल मीडिया सबसे अहम बन गया है। समाज का हर तबका इससे सीधे तौर पर जुड़ता है।

आजादी मिलने के बाद मीडिया का एक नया दौर शुरू हुआ। यह दौर लगभग अस्सी के दशक तक चला। इस दौर में रेडियो के साथ-साथ टेलीविजन, अखबार, पत्र-पत्रिकाएं बड़े पैमाने पर उभरकर आए। इस दौर में मीडिया भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाने के लक्ष्य को लेकर चलता दिखाई देता है। केन्द्र सरकार ने प्रेस के कामकाज को नियन्त्रित करने के लिए एक संस्थागत ढांचा बनाना शुरू किया। १९५२ और १९७७ में दो प्रेस आयोग गठित किए गए। १९५६ में 'रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स ऐक्ट' का गठन किया गया। इसकी तरह १९६५ में एक संविधानगत संस्था 'प्रेस परिषद्' की स्थापना की गई जो आज भी प्रेस और प्रेस से सम्बन्धित सभी विषयों पर निगाह रखती है।

आजादी के बाद राष्ट्र के स्तर पर एक राष्ट्रवाद की सहमति बनाने का लक्ष्य मीडिया के केन्द्र में था। मीडिया कहीं न कहीं लोगों में विश्वास का संस्कार जगाने में कामयाब दिखाई देता है। अखबार, पत्रिकाओं में प्रकाशित विचार और समाचार को सत्य, साफ और स्वीकार्य के रूप में देखा जाता था। इसी तरह रेडियो और दूरदर्शन (प्राइवेट चैनलों का उदय नहीं हुआ था) से प्रसारित समाचार और विचार को भी सच और उपयोगी मानकर स्वीकार्य किया जाता था। यहाँ तक कि कानून, पंचायत, न्याय और साहित्य के क्षेत्र में इसे प्रामाणिक और तथ्यपरक माना गया। इस समय तक रेडियो और टीवी सरकार के हाथ में और मुद्रित मीडिया निजी क्षेत्र में था। मीडिया का यह दौर कई मायनों में जीवन, समाज, संस्कृति, राजनीति, विज्ञान और शिक्षा को नई दिशा देने में कामयाब दिखाई देता है।

और मीडिया का तीसरा दौर भी आया, जब कई स्तरों पर बदलाव हुए। इसकी शुरूआत नब्बे के दशक में हुई। भारतीय राजनीति के केन्द्र में कांग्रेस-शासित सत्ता नरसिंम्हा राव के हाथ में थी। उन्होंने ही तथाकथित राष्ट्रनिर्माण और विकास के नाम पर डब्ल्यूटीओ यानि विश्व व्यापार संगठन में शामिल होकर उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण के फार्मूले को अपनाया और संविधान में संशोधन भी किया। मीडिया का यह दौर ऐसे बदलावों से गुजरा, जो कई रूपों और स्तरों में बाजारीकरण को स्वीकारता दिखाई देता है। टीवी और रेडियो चैनलों का सारे देश में बहुत बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ। उसी का प्रतिफल है कि आज देश में भारतीय भाषाओं में चलने वाले टीवी चैनलों ने अंग्रेजी चैनलों को पछाड़ दिया। करोड़ों लोग भारतीय भाषाओं में चलने वाले टीवी चैनलों से किसी न किसी रूप में जुड़े हुए हैं। इसे हम मीडिया में आए नव-क्रान्ति का दौर कह सकते हैं। इसे हम मीडिया का बहु-बाजारीकरण भी कह सकते हैं। नई प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल ने सोशल मीडिया की ताकत अजेय बना दी है। मीडिया की हालत इस तूफानी दौर में महज दस सालों में वही बनती दिखाई देती है जिसे पश्चिम में 'मीडियास्फेयर' कहा जाता है।

सोशल मीडिया का आगे होता विस्तार इसका परिणाम बताया जा रहा है। मीडिया का पहली बार इतना विशाल बाजार खड़ा हुआ, जिसने राजसत्ता और जनसत्ता दोनों को अपने नियन्त्रण में ले लिया। स्वदेशी और विदेशी निजी पूंजी को खुले मन से शासन ने मीडिया में प्रवेश की अनुमति दी। इससे मीडिया पर निजी नियन्त्रण का और भी विस्तार हुआ। शिक्षा, सेहत, योग, मजहब, रोजगार, मनोरंजन, समाचार, विचार और विज्ञान को इस मीडिया ने आमजन तक अपनी पहुँच बनाने में बहुत मदद की। 'उपभोक्ता-क्रान्ति' के कारण विज्ञापन से होने वाली आमदनी कई गुना बढ़ गई। प्रौद्योगिकी और उद्यमशीलता की दृष्टि से देखें तो यह पाते हैं कि प्रतिभा का ऐसा उपयोग सोशल मीडियां के जरिए पहली बार किया गया। मीडिया का विज्ञापनी संस्कृति का यह नया दौर कई तरह से सोशल लाइफ पर असरकारी साबित हुआ। १९९५ में भारत में पहली बार इन्टरनेट का गाँव, कस्बे और शहरों में बहुत तेजी के साथ विस्तार हुआ। इसे नई पढ़ी-लिखी पीढ़ी ने हाथोंहाथ लिया। जिस जानकारी की, मनोरंजन, लाइफ और मस्ती के स्तर पर शायद कल्पना भी नहीं की जाती थी, वह इन्टरनेट के आते ही बहुत ही सहजता से हासिल हो गयी।

आज का सोशल मीडिया कई स्तरों पर नया है और अपना असर भी कई तरह से डाल रहा है। और हम देखें तो पाते हैं कि २१ वीं सदी के पहले दशक के अन्त तक बहुत बड़ी तादाद में लोगों के निजी और व्यावसायिक जीवन का एक अहम हिस्सा नेट के जरिए संसाधित होने लगा। अब तो ऐसा लगता है कि बिना नेट के समाज के किसी भी तबके की जिन्दगी आधी-अधूरी है। देश-दुनिया से जुड़ जाने का सुख नई पीढ़ी के लिए तो एक अद्‌भुत एहसास जैसा है। टोटल सोशल मीडिया एक टच स्क्रीन पर बहुत कम व्यय करके हासिल कर लेना नई पीढ़ी के लिए किसी स्वप्न को साकार करने जैसा है। जो मनोरंजन घर में टीवी स्क्रीन पर बैठकर किया जाता था, नेट की सहज उपलब्धता ने उसे उसके मोबाइल पर सहजता से उपलब्ध करा दिया है। दुनिया की कोई भी जानकारी, आविष्कार, खोज, शोध, परीक्षण, रोजगार, साहित्य, मनोरंजन, खेल, संगीत, गीत, समाचार, लेख, बातचीत, सन्देश और संवाद एक पल में मोबाइल नामक जादूगर ने अपनी जादूगरी से उपभोक्ता की चाहत के मुताबिक तुरत-फुरत में सब कुछ मुहैया करा दिया।

सोशल मीडिया का ही कमाल है कि जो दुनिया कभी रहस्यमय लगती थी, सोशल मीडिया ने उसे वास्तविकता में प्रकट कर दिया है। भारत आज सोशल मीडिया के सबसे बड़े बाजार के रूप में उभर चुका है। इसे देखते हुए विदेशी मीडिया ने भारत को अपने लिए सबसे बेहतर मीडिया सेंटर समझा और यहाँ के सस्ते श्रम का लाभ उठाते हुए मीडिया के सभी आयामों पर कब्जा जमा लिया है। ग्लोबल संस्थाओं ने भारत को अपने मीडिया प्रोजेक्टों के लिए आउटसोर्सिंग के केन्द्र बनाकर भारतीय बाजार में मौजूद मीडिया के विशाल बाजार पर ही कब्जा नहीं किया, बल्कि यहाँ की असाधारण टेलेंट-पूल का ग्लोबल बाजार के लिए दोहन करना शुरू किया। हैरत में डालने वाली बात यह है कि भारत की नई पीढ़ी ने इस षड्यन्त्र को अपने लिए आज भी वरदान समझा हुआ है। किस तरह से विदेशी कंपनियों ने भारत की अर्थव्यवस्था पर विज्ञापनी सोशल मीडिया के जरिए कब्जा जमाना शुरु किया, जिसके दुष्परिणामों के बारे में आम आदमी को पता नहीं है। वह तो महज इसे विज्ञान का वरदान समझकर इसका सहज उपभोक्ता बनना ही ठीक समझता है। विज्ञापनों ने इसे और भी अधिक बाजारू बना दिया है। आम आदमी ने स्वयं को इस बाजार का सबसे बेहतर उपभोक्ता साबित करने के लिए इसके कसीदे कढ़ने में ही अपनी योग्यता समझी हुई है।

मीडिया में टीवी ने समाज पर कई स्तरों पर असर डाला, लेकिन इसका नकारात्मक असर समाज की उत्सवधर्मिता और सहज जीवनधर्मिता को कई स्तरों पर प्रभावित कर रहा है। टीवी ने अपनी विज्ञापनी संस्कृति के बल पर आम आदमी को अपने आगोश में ले लिया है। केबल और डीटीएच सेवा ने गांवों तक जिस सहजता से टीवी स्क्रीन पर कई बड़े चर्चित चैनलों को उपलब्ध करा दिया है, उससे आम आदमी ने पश्चिमी संस्कृति और विज्ञापनों के भाड़पन में स्वयं को उलझा लिया है। मनोरंजन,

खेल, संगीत, फिल्म, सीरियल, खोज, योग, धर्म, अध्यात्म, राजनीति की हर पल की धड़कन, विज्ञान के आविष्कार और अन्य अनेक क्षेत्रों की सहज जानकारी केबल और डीटीएच सेवा के माध्यम से टीवी के जरिए आज सहज रूप में प्रत्येक घर में उपलब्ध है। हर पल की खबर, हर दिन के खेल, संगीत और खेती-किसानी जैसी अनेक जानकारियाँ टीवी के माध्यम से आमजन को सुलभ हो गई हैं।

कहा तो यह भी जाता है कि आम आदमी सोशल मीडिया का उपयोग भी बड़े पैमाने पर करके खुद को संतुष्टि पा रहा है, परन्तु हकीकत महज इतनी ही नहीं है। कहने को तो रेलवे-टिकिटिंग, लाइफ इन्श्योरेंस, ई-कॉमर्स, ई-टिकिटिंग और ई-गवर्नेंस जैसी सुलभता सोशल मीडिया का उपहार है। लेकिन दूसरी तरफ अश्लीलता, हिंसा, ठगी, क्रूरता और भ्रष्टाचार के नए चेहरे भी आए। इससे नई पीढ़ी को बहुत संकुचित और स्वार्थी बना दिया है।

मीडिया के सकारात्मक पक्ष की बात करें तो पाते हैं कि सेहत, शिक्षा, रोजगार, बाजार, व्यापार और खेती-किसानी जैसे कार्यों में भी मीडिया की पहुँच गहरी हो गई है। बेहतर सेहत के देशी-विदेशी नुस्खे, घातक बीमारियों के सहज इलाज और गुमशुदा की खोज, वर-वधु खोजने से लेकर भविष्यफल और वास्तुशास्त्र की जानकारी सोशल मीडिया के जरिए सुलभता से जैसी आज हासिल हो रही है, वैसा कभी नहीं हुई।

यदि हम जीवन, परिवार और समाज की बेहतरी के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करें तो अनेक लाभ घर बैठे भी हो सकते हैं। कृषि, बागवानी, उद्योग-धन्धे, व्यापार, बेहतर शिक्षा, बेहतर सेहत, सुगम यात्रा, कानून की जानकारी, अनेक समस्याओं के निदान, आंधी-तूफान, बाढ़, बारिश, अकाल और पूरी दुनिया के एक-एक कण और पल की स्थिति की जानकारी आज सोशल मीडिया के जरिए उपलब्ध करायी जा चुकी है। पुस्तकों का स्थान धीरे-धीरे वेबसाइट्स ने ले लिया है। अनेक ऐप्स मुफ्त में नेट पर उपलब्ध हैं। इन्हें डाउनलोड करके इनका बेहतर इस्तेमाल किया जा सकता है।

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र पर प्रभाव

हम देखते हैं कि सोशल मीडिया ने नई पीढ़ी को हर स्तर पर प्रभावित किया है। दिन ही नहीं, रात भी सोशल मीडिया के नाम हो गई है। भारत के गाँव और अफ्रीकी देशों के किसी गाँव को जोड़ने में एक मिनट भी नहीं लगता। अपने गाँव की मौलिकता, नूतनता और उत्तमता इससे प्रभावित हो रही है। भारतीय संस्कृति, शिक्षा, स्वास्थ्य, भाषा, विज्ञान और अध्यात्म सभी कुछ विदेशी प्रभाव के कारण विकृत होते जा रहे हैं। इस तरह से मिलावटी जीवन शैली बनती जा रही है जो न तो भारतीय रह पा रही है और न ही पूर्णत: विदेशी ही। मैकडोनल संस्कृति का खुलापन सोशल मीडिया के जरिए नई पीढ़ी को एक 'वस्तु' में तबदील कर रहा है। नई पीढ़ी इसे 'मॉडर्न' विकास के रूप में एक दीवाने के रूप में स्वीकारती जा रही है। इससे भारतीयता का उच्चतम भाव कहीं लुप्त हो गया है।

बात केवल इतनी ही नहीं है। बड़ी-से-बड़ी और छोटी-से-छोटी बातें और विषय सोशल मीडिया के हिस्से हैं। दोस्ती का नया अंदाज सोशल मीडिया ने विकसित किया है। नई पीढ़ी अपना ज्यादातर वक्त अपने दोस्तों के संग बिताने में अधिक मशगूल दिखाई पड़ती है। इससे उसकी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्ति, क्षमता और सहजता पर बहुत बुरा असर पड़ रहा है।

सोशल मीडिया का नकारात्मक असर कई स्तरों पर हमें प्रभावित कर रहा है। बच्चों के रात-दिन नेट पर लगे रहने के कारण आँख, मस्तिष्क और अन्य अंगों पर बुरा असर पड़ रहा है। अनजान लोगों से रिश्ता बनाने के कई दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं। सोशल मीडिया से जुड़ने के कारण युवाओं में कई तरह के मिथक पैदा हो रहे हैं। इससे अभिभावकों के मन में उनके प्रति कई तरह की शंकाएं पैदा हो रही हैं।

अश्लीलता, खुला सैक्स, खुली दोस्ती और अनजानी दोस्ती से सोशल मीडिया का सबसे बुरा असर युवाओं के मन और शरीर पर देखा जा रहा है। इस पर गौर करने की सबसे अधिक जरूरत है।

नई जानकारियों के नाम पर निजी जानकारियों और फोटो, वीडियो मुफ्त में हासिल करके युवा कई तरह की

समस्याओं का शिकार बन रहा है। इस पर भी ध्यान देने की जरूरत है। सोशल मीडिया के अधिक इस्तेमाल के कारण सोशल ऐंग्जाइटी जैसी समस्या से युवा ग्रस्त हो रहा है।

धन, समय, सहजता, चिन्तन और चिन्ता की समस्या सोशल मीडिया ने कृत्रिम ढंग से पैदा की है। अभिभावकों के लिए यह नई समस्या है।

आतंकवाद, सांप्रदायिकता, नफरत, हिंसा, नई बीमारियों के चपेट में आने का डर, मांसाहार, शराबखोरी, धूम्रपान, गन्दी लत और अन्य अनेक समस्याएँ सोशल मीडिया के कारण तेजी के साथ बढ़ी हैं।

यदि सोशल मीडिया के नकारात्मक पक्ष को हम नजरअंदाज करते रहे तो इसके दूरगामी नकारात्मक असर से हम बच नहीं सकते। इसलिए सोशल मीडिया के अच्छे-बुरे इस्तेमाल पर जरूर गौर करना चाहिए, वरना इससे जीवन का बड़ा हिस्सा सोशल मीडिया के नाम होने का खतरा मंडराता रहेगा और जिन्दगी जीने के मायने ही कहीं सोशल मीडिया के नाम न हो जाए। मानव मूल्यों के खत्म होने और इंसान का वस्तु या यन्त्र के रूप में तब्दील होने का खतरा आसन्न दिखाई दे रहा है। एक सन्तुलित जीवन, परिवार, समाज, संस्कृति और देश के लिए सोशल मीडिया के दोनों पक्षों पर हमें खुले मन से विचार करना चाहिए। यदि कानून बनाना पड़े तो भी, कानून बनाकर गिरते जीवन मूल्यों को रोकने की कोशिश भी करनी होगी।

व्याकरण एवं दर्शन के अध्ययन हेतु प्रवेश प्रारम्भ

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी **परोपकारिणी सभा के द्वारा 'महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल' ऋषि उद्यान, अजमेर** में पिछले १८ वर्षों से प्रारम्भिक संस्कृत ज्ञान, पाणिनीय व्याकरण और दर्शनों के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। अत: व्याकरण एवं दर्शन पढ़ने के इच्छुक विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।

इस काल में ऋषि उद्यान में प्रतिदिन यज्ञोपरान्त उपदेश व प्रवचन का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा। समय-समय पर विविध विषयों पर विद्वानों द्वारा कक्षायें भी होती रहेंगी। ब्रह्मचारियों के लिए निवास और भोजन व्यवस्था नि:शुल्क रहेगी। प्रवेश लेने वाले ब्रह्मचारियों के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं-

- आयु न्यूनतम १६ वर्ष हो।
- न्यूनतम १०वीं कक्षा पढ़े हुए विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।
- गुरुकुल के अनुशासन का पालन करना अनिवार्य होगा।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

स्वामी विष्वङ् परिव्राजक - ९४१४००३७५६

समय- ९:००-१०:००प्रात:, १२:३०-१:३० मध्याह्न

पता- महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर (राज.) ३०५००१

ऋषि दयानन्द ने कहा था

विद्वान् एकमत हो प्रीति से वर्तें

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़, सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे के विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें-वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों (साधारण जनों) में विरोध बढ़कर अनेकविध दु:ख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। (स. प्र. भू.)

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

ईश्वर (वैज्ञानिकों की दृष्टि में), प्रस्तुतकर्ता एवं अनुवादक - पं. क्षितीश कुमार वेदालङ्कार

मूल्य -१५० रु., **पृष्ठ** - २६४

दुनिया में दो तरह के मनुष्य पाये जाते हैं, एक वो जो भगवान् को अर्थात् उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और दूसरे वे जो भगवान् जैसी किसी सत्ता पर भरोसा नहीं करते। पहले को आस्तिक और दूसरे को नास्तिक कहा जाता है। नास्तिकों के अपने तर्क हैं और इन तर्कों में वे प्राय: वैज्ञानिक प्रयोगों, आविष्कारों, विज्ञान की प्रगति की दलीलों का ही हवाला देते हैं। विज्ञान है तो बहुत अच्छी चीज़, पर अगर कहीं किसी वैज्ञानिक की चूक से कुछ गलत निष्कर्ष आ जाये तो उसे आंखें बन्द करके मान लिया जाता है। आखिर वैज्ञानिक भी तो मनुष्य ही है, गलती तो वह भी करता ही है। इस तरह एक नये प्रकार का अन्धविश्वास 'वैज्ञानिक अन्धविश्वास' जन्म लेता है और दो अन्धविश्वास आपस में टकरा जाते हैं। जो भगवान् को नहीं मानता, वह भी सोचना नहीं चाहता, केवल दूसरों के भरोसे चलता है और जो मानता है, उसने भी अपना दिमाग बाबाओं के पल्ले बाँध रखा है। इन दोनों से अलग कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपने मस्तिष्क को थोड़ा मेहनत करने देते हैं और सत्य तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। ऐसे ही कुछ वैज्ञानिकों के विचारों को इस पुस्तक में संकलित किया गया है। जरूरी नहीं कि ये सभी वैज्ञानिक भगवान् को स्वीकार करते ही हों, पर वह इतना तो स्वीकार करते ही हैं कि कुछ तो है जो विज्ञान की पकड़ से बाहर है। उनकी इसी 'ना' में शायद 'हाँ' छिपी है, बस अन्तर इतना ही है कि उनकी वह खोज बिना नाम वाली है और वेद ने उसको नाम दे दिया है- 'ईश्वर'।

त्रैतवाद- लेखक-विद्यामार्तण्ड पंडित बुद्धदेव विद्यालङ्कार

मूल्य-२० रु., **पृष्ठ** -४०

परिचय- पं. बुद्धदेव जी एक बार अपने आर्य मित्र के पास मिलने गये। उन्होंने देखा कि मित्र का बड़ा बेटा कम्युनिस्ट विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित है। कारण यह कि वह देश-विदेश में घूमकर आया है और किताबें भी कम्युनिज़्म की ही पढ़ता है। पंडित जी ने वह पुस्तक मांगी, जिससे कम्युनिज़म का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। उस पुस्तक का नाम था The Origin of life on the Earth, जिसका विषय था, 'पृथ्वी पर पहली बार जीवन कैसे आया?' बुद्धदेव जी ने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर इसकी समीक्षा की और उस समीक्षा की एक पुस्तक बन गई- त्रैतवाद।

आख्यातिक- लेखक- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- २५० रु. , **पृष्ठ** - ६०८

परिचय- महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन पर बहुत बल देते थे। विशेषकर व्याकरण पर, जो कि सब शास्त्रों की कुंजी है। संस्कृत व्याकरण को सरल एवं सुगम बनाने के लिये उन्होंने पाणिनीय व्याकरण के सहायक ग्रन्थों के रूप में 'वेदांग प्रकाश' नाम से १४ पुस्तकें लिखीं। उनमें से आठवाँ भाग यह 'आख्यातिक' है। इसमें मूलत: धातु पाठ की व्याख्या है। साथ ही उन धातुओं के रूप निर्माण की प्रक्रिया को भी समझाया गया है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

शङ्का समाधान - २८

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का- यह 'वैदिक सन्ध्या' जिसका हम समाजों में, सत्संगों में पाठ करते हैं। किस पुस्तक का अंश है?

रामपाल, सरिता विहार, नई दिल्ली।

समाधान- वैदिक कर्मकाण्ड के प्रारम्भिक संकेत ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। परवर्ती श्रौत एवं गृह्यसूत्रों में यह व्यवस्थित विभाजन-नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य इस रूप में प्राप्त है। नित्यकर्म के रूप में पञ्चमहायज्ञ सर्वस्वीकार्य हैं। **शतपथ ब्राह्मण** में इन्हें महायज्ञ/महासत्र कहा गया है-

'पञ्चैव महायज्ञाः तान्येव महासत्त्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति'

-श. प. ११.३.८.१। इनमें एक है ब्रह्मयज्ञ।

ब्रह्मयज्ञ के विषय में कहा है- 'स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः' अर्थात् स्वाध्याय ब्रह्मयज्ञ है। स्वाध्याय का अर्थ है- 'स्व' का अध्याय-अध्ययन, मनन, चिन्तन। 'स्व' का अर्थ है-आत्मा, आत्मीय, अपना। इस 'स्व' के अध्ययन-मनन के साधन जहाँ वेदादि शास्त्र हैं, वहीं दूसरा साधन सन्ध्या है। इस विषय में महर्षि दयानन्द का कथन है कि- **'तत्र ब्रह्मयज्ञस्यायं प्रकारः साङ्गानां वेदादिशास्त्राणां सम्यगध्ययनमध्यापनं सन्ध्योपासनं च सर्वैः कर्त्तव्यम्। तत्राध्ययनाध्यापनक्रमो यादृशः पठनपाठन विषय उक्तस्तादृशो ग्राह्यः। सन्ध्योपासनविधिश्च पञ्चमहायज्ञविधाने यादृश उक्तस्तादृशः कर्त्तव्यः'**

ऋ. भा. भू. पञ्चमहायज्ञविषयः- पृ. २५९

'सन्ध्यायन्ति सन्ध्यायते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या' (प. म. य. वि. पृ. २२) जिसमें सम्यग् प्रकार से परब्रह्म का ध्यान करते हैं अथवा ध्यान किया जाता है, वह सन्ध्या है। अर्थात् सन्ध्या का प्रयोजन परब्रह्म का ध्यान करना है।

महर्षि दयानन्द से पूर्व भी सन्ध्या-पद्धति प्रचलित रही हैं, किन्तु महर्षि से पूर्व की सन्ध्या-पद्धति मुद्रित रूप में हमें उपलब्ध नहीं हो सकी है। सन्ध्या-पद्धति के चार पृथक्-पृथक् हस्तलेख पुरातत्त्वविद् आचार्य विरजानन्द दैवकरणि के पुरुषार्थ से गुरुकुल झज्जर के पुरातत्त्व संग्रहालय में हैं। श्री दैवकरणि के अनुसार ये हस्तलेख लगभग १५० वर्ष पुराने हैं। इनमें से क्रमांक - २५ का हस्तलेख 'सन्ध्या-प्रयोग' नामक है। काशी के पौराणिक जगत् में पं. विद्याधर शर्मा गौड़ सम्पादित एक अन्य सन्ध्या-पद्धति प्रचलित है।

'सन्ध्या-प्रयोग' (हस्तलेख गुलकुल झज्जर) तथा गौड़ सम्पादित पद्धतियों की तुलना करने पर लगभग ९० प्रतिशत साम्य दिखाई देता है। ये दोनों पद्धतियाँ किसी एक पाण्डुलिपि पर आधृत हैं।

सन्ध्या प्रयोग का प्रारम्भ '**श्री गणेशाय नमः**' से हुआ है तो गौड़ सम्पादित पद्धति **ओं केशवाय नमः स्वाहा। ओं नारायणाय नमः स्वाहा। ओं माधवाय नमः स्वाहा** तथा इन तीनों से आचमनपूर्वक प्रारम्भ हई है। दोनों पद्धतियों में अघमर्षण सूक्त दो बार पढ़ा गया है। प्रथम बार दोनों में सूक्त से आचमन का निर्देश है। गौड़-पद्धति में दूसरी बार भी अघमर्षण सूक्त से आचमन का ही विधान है, किन्तु सन्ध्या-प्रयोग में- **'त्रिः सकृद्वाऽघमर्षणं जपेत्'** कहकर अघमर्षण सूक्त का तीन अथवा एक बार जप विहित है। अघमर्षण सूक्त के अनन्तर दोनों पद्धतियों में **'आपो ज्योतीरसोऽमृतम्'** मन्त्र से आचमन का निर्देश है। आचमन के बाद दोनों पद्धतियों में- **'उद्वयं...'** **'उदुत्यं...'**, **'चित्रं देवानाम्...'**, **'तच्चक्षुर्देवहितं...'**, इन चार मन्त्रों से **सूर्य उपस्थान** वर्णित है। दोनों ही पद्धतियों में उपस्थान के पश्चात् **अंगन्यास** तथा **१०८ गायत्री मन्त्र** के जप का निर्देश है। एक-दो स्थान पर क्रम विपर्यय है। इस प्रकार इन दोनों का उपजीव्य एक प्रतीत होता है। 'सन्ध्या-प्रयोग' को लगभग १५० वर्ष पुराना मानने पर भी इसे महर्षि से पूर्ववर्ती मानना उचित प्रतीत नहीं होता।

महर्षि दयानन्द ने सन्ध्या-पद्धति का निर्माण या क्रियाओं में मन्त्र-विनियोग करते समय एक व्यवस्थित क्रमबद्ध प्रक्रिया अपनाई है। तद्यथा-

महर्षि प्रतिपादित पद्धति के प्रारम्भिक भाग आचमन से व्याहृतिपर्यन्त से योग्यता सम्पत्ति सूचित होती है। अघमर्षण एवं मनसा परिक्रमा का अर्थ विचारपूर्वक जप, सन्ध्या की रूपसमृद्धि का बोधक है। मनसा परिक्रमा के '**प्राची दिगग्निः...**' आदि छः अथर्ववेदीय मन्त्रों का विनियोग महर्षि की अपनी उद्भावना है। उपस्थान में महर्षि ने भी-'**उद्वयं...**', '**उदुत्यं...**' **चित्रं देवानाम्...**, '**तच्चक्षुर्देवहितं...**' ये चार ही मन्त्र रखे हैं, किन्तु कर्मकाण्ड में मन्त्रों के अर्थानुसारी विनियोग की परम्परा है।

इस प्रकार अघमर्षण एवं उपस्थान मन्त्रों की समानता होने पर भी यह कहना उचित नहीं होगा कि महर्षि ने इसे 'सन्ध्या- प्रयोग' से लिया होगा। अर्थानुसारी विनियोग के आधार पर एक ही मन्त्र विभिन्न ग्रन्थों और पद्धतियों में उपलब्ध होता है। महर्षि के विनियोग अर्थानुसारी हैं, जैसे आचमन के लिए '**शन्नो देवीः...**' मन्त्र का विनियोग तथा अघमर्षण सूक्त का अर्थ- विचारपूर्वक जप में विनियोग करना, किन्तु 'सन्ध्या-प्रयोग' में अघमर्षण सूक्त का आचमन में विनियोग अर्थाश्रित नहीं है। यह सम्भव है कि महर्षि ने अपने समय प्रचलित पद्धतियों को देखा हो, तब भी महर्षि ने शब्दानुसारी विनियोग की उपेक्षा कर अंगन्यास, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के ध्यान के साथ प्रचलित अनेक अवैदिक परम्परा को तोड़कर प्रयोजनपूर्ण पूर्णतः वैदिक पद्धति प्रदान की है। इसमें किसी भी पद्धति से आंशिक साम्य होने पर भी महर्षि-चिन्तन की मौलिकता इसे स्वतन्त्र पद्धति का स्थान प्रतिपादित करती है।

माता का कर्त्तव्य

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करें, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगें तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करें कि जो जिस वर्ण का स्थान-प्रयत्न अर्थात् जैसे 'प' इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर, स्वर, अक्षर, मात्रा, पद वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न-भिन्न श्रवण होवे। जब वह कुछ-कुछ बोलने ओर समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्त्तमान और उनके पास बैठने आदि की शिक्षा करें, जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करे वैसे प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है, इससे उसका स्पर्श न करें।

(स. प्र. द्वि. स.)

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

संस्था-समाचार

आर्य वीरांगना दल प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न:- ५ जून सायंकाल ६.३० बजे शिविर का उद्घाटन हुआ। सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल की प्रधान शिक्षिका एवं शिविर की मुख्य शिक्षिका श्रीमती अभिलाषा ने मुख्य अतिथि आयुर्वेदिक चिकित्सालय अजमेर की वैद्य श्रीमती मनीषा का स्वागत किया। तत्पश्चात् मुख्य अतिथि द्वारा ध्वजारोहण हुआ। श्रीमती मनीषा ने शिविरार्थी बालिकाओं और आयोजकों को शुभकामनाएँ देते हुए अपने उद्बोधन में कहा कि यह शिविर महिला सशक्तिकरण के लिये आयोजित किये जाने वाले कार्यक्रमों में सर्वोत्तम है। शिविर संचालिका श्रीमती कुमुदिनी आर्या ने बताया कि महिलाओं की धार्मिक शिक्षा, संस्कार, सुरक्षा और सेवा प्रशिक्षण के लिये १८ वर्षों से परोपकारिणी सभा द्वारा यह शिविर सफलतापूर्वक आयोजित किया जा रहा है। आबकारी अधिकारी श्री विकास चन्द्र, परोपकारिणी सभा के मन्त्री श्री ओममुनि, सभा के कोषाध्यक्ष श्री सुभाष नवाल, श्री वासुदेव आर्य, श्री विश्वास पारीक ने बालिकाओं को पूर्ण उत्साहित रहने के लिये प्रेरित किया। इस अवसर पर श्रीमती मिथिलेश आर्या, श्री मानसिंह, श्री मृत्युंजय शर्मा, श्री रमेश मुनि, डॉ. नन्दकिशोर काबरा, श्री विजय गहलोत, श्री लक्ष्मण मुनि, आश्रमवासी, शिविरार्थियों के अभिभावक एवं दर्शकगण उपस्थित रहे।

मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र के विभिन्न नगरों तथा लखनऊ, दौसा, भीलवाड़ा, पुष्कर, कड़ैल, अजमेर की ९० वीरांगनाओं को लक्ष्मीबाई वर्ग, उर्मिला वर्ग, माता सीता वर्ग, गार्गी वर्ग, अनसुइया वर्ग, रुक्मिणी वर्ग के अंतर्गत बौद्धिक एवं शारीरिक प्रशिक्षण दिया गया। बौद्धिक कक्षाओं में स्वामी विष्वङ्, आचार्य सोमदेव, आचार्य सत्येन्द्र, श्री रमेश मुनि, डॉ. प्रशान्त शर्मा, डॉ. किरण मेहरा एवं श्रीमती अनिता उपाध्याय ने वीरांगनाओं का मार्गदर्शन किया। आर्य वीरांगना दल की संरक्षिका श्रीमती ज्योत्स्ना 'धर्मवीर' प्रतिदिन शिविर की सभी गतिविधियों का निरीक्षण करती रहीं। उप शिक्षिकाएँ सुश्री दीपमाला, सुश्री पूजा ने व्यायाम सिखाया। श्रीमती स्नेहा, श्रीमती आशा एवं श्रीमती यामिनी ने शिविर की व्यवस्था में सहयोग किया। १० जून को प्रात:काल ९ बजे आर्य वीरांगनाओं ने जुलूस निकाला, जो ऋषि उद्यान से दौलत बाग, बारादरी, बजरंगगढ़ चौराहा होती हुई भिनाय कोठी पहुँचा। जुलूस में श्री सुभाष नवाल, श्रीमती रमा नवाल, श्रीमती कुमुदिनी, श्री विश्वास पारीक, श्री वासुदेव आर्य सम्मिलित हुए।

१२ जून २०१८ को सायंकाल समापन अवसर पर किशनगढ़ के उद्योगपति श्री ओम गुप्ता कार्यक्रम के मुख्य अतिथि रहे। आबकारी अधिकारी श्री विकास चन्द्र ने शिविर की मुख्य शिक्षिका श्रीमती अभिलाषा, उपशिक्षिका सुश्री पूजा एवं सुश्री दीपमाला के मार्गदर्शन में वीरांगना दल का निरीक्षण किया। वीरांगनाओं ने संगीत के साथ जूडो-कराटे, पीटी, ढाल-तलवार, लाठी, सूर्य नमस्कार, भूमि नमस्कार, विभिन्न योगासन, स्तूप, मानव पुल, रस्सा, आसन आदि का कुशलतापूर्वक प्रदर्शन किया। वीरांगना कुमारी माधुरी ने शिविर का अपना अनुभव सुनाया। अनेक दानी महिलाओं और महानुभावों ने शिविर में अन्न, फल, धन आदि से भरपूर सहयोग किया।

जन्मदिवस पर यज्ञ- ऋषि उद्यान की भव्य यज्ञशाला में ३ जून को श्री दिनेश नवाल ने पत्नी श्रीमती राजकुमारी नवाल के साथ विवाह-वर्षगाँठ पर यज्ञ किया। १२ जून को श्री लक्ष्मण मुनि ने अपने जन्मविस पर यज्ञ किया। परोपकारिणी सभा की ओर से सभी यजमानों को हार्दिक शुभकामनायें।

अतिथि- अजमेर नगर में केसरगंज स्थित ऐतिहासिक महर्षि दयानन्द आश्रम, (परोपकारिणी सभा का मुख्य कार्यालय) वैदिक यन्त्रालय, अनुसन्धान भवन एवं वैदिक पुस्तकालय, ऋषि निर्वाण स्थल-भिनाय कोठी, अन्त्येष्टि स्थल-मलूसर, ऋषि उद्यान स्थित महर्षि दयानन्द सरस्वती संग्रहालय, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल आदि महत्त्वपूर्ण स्थानों को देखने, संन्यासियों-विद्वानों से मिलकर शंका-समाधान करने, उपदेश ग्रहण करने, व्याकरण-दर्शन आदि शास्त्रों का अध्ययन करने, दैनिक यज्ञ एवं प्रवचन से लाभ लेने, पुष्कर आदि पर्यटन स्थलों में भ्रमण एवं आर्यसमाज के प्रचार के लिए देश-विदेश के संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान्, पुरोहित, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, आर्यवीर, आर्यवीरांगना, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता, गृहस्थ स्त्री-पुरुष और बच्चे निरन्तर आते रहते हैं। सभी आगन्तुकों के निवास एवं नाश्ता, भोजन, दूध आदि की समुचित व्यवस्था ऋषि उद्यान में उपलब्ध रहती है। पिछले १५ दिनों में अकोला, चित्तौड़, करनाल, मथुरा, दिल्ली, जयपुर, अलवर, सरवाड़, जोधपुर, शाहपुरा, गरोठ, पौंधा, होशंगाबाद, भीलवाड़ा, गंगापुरसिटी, महेन्द्रगढ़, जमानी, पुष्कर, शिवगंज, श्रीगंगानगर, कौशाम्बी, पाली, बीकानेर, मन्दसौर, लाडनूँ, देहरादून, सम्बल, किच्छा, लखनऊ, रोजड़, सिरसा, पटना आदि स्थानों से १०१ अतिथि ऋषि उद्यान पधारे।

दैनिक प्रवचन-प्रात:कालीन सत्संग में स्वामी सम्पूर्णानन्द, आचार्य सोमदेव, आचार्य कर्मवीर, आचार्य सत्येन्द्र के व्याख्यान हुए। सोमवार से गुरुवार तक सायंकालीन सत्संग में आचार्य सत्येन्द्र ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पुस्तक का पाठ करवाया एवं व्याख्यान किया। शुक्रवार सायंकाल को स्वामी शंकरदेव ने योग विषय पर व्याख्यान दिया। शनिवार सायंकालीन सत्संग में श्री लक्ष्मण मुनि ने व्याख्यान दिया। रविवार सायंकालीन प्रवचन में स्वामी सुखानन्द और ब्र. कृपासिन्धु ने प्रवचन दिया।

क च ट त प वर्गस्थ प्रभु

रमेशचन्द्र च्यवानः

करुणाकन्दः खंगरुत्मान् घनानन्दः जगत्पिता।
क वर्गस्थ कृपावन्तः कर्मफल प्रदायकः।।

भाषार्थ-

क वर्ग- जो करुणाकन्द खं (आकाशवद्व्यापक) गरुत्मान् (गुर्वात्मा महास्वरूप) आनन्दघन जगत्पिता है, वह क वर्गस्थ कृपावन्त परमेश्वर हमारा कर्मफल प्रदाता है।

चन्द्रश्छन्दः जगज्ज्येष्ठः झङ्कृतिः सृष्टिवीणायाः।
च वर्ग स्थितो स्वामी चलाचल प्रदायकः।।

भाषार्थ-

च वर्ग- जो चन्द्र (आह्लादप्रद), छन्द (सृष्टि में छाया, व्यापा हुआ), जगत् में ज्येष्ठ एवं विश्व-वीणा की झङ्कारवत है, वह च वर्ग स्थित स्वामी हमें चलाचल सम्पत्तियों का प्रदाता है।

टंकपतिः प्रकृतेश्च ठक्कुर ओ३म् डिण्डिमः।
ढौकयन्ता साधकस्य ट वर्गो मोक्षदायकः।।

भाषार्थ-

ट वर्ग- जो प्रकृति परमाणुओं का कोषाध्यक्ष है, ओ३म् घोषस्वरूप ठाकुर (स्वामी) है, वह ट वर्ग स्थित प्रभु साधकों को निकट बुलाकर मोक्ष देता है।

तारकस्थः देव धाता निर्माता भुवनस्य च।
त वर्ग स्थितो प्रभुः मे तापनाश प्रदायकः।।

भाषार्थ-

त वर्ग- जो तारक जगत् का तारणहार, थः= भयत्रायक (वाचस्पत्यं पृष्ठ ३४०३) देव धाता तथा भुवनों का निर्माता है। वह त वर्गस्थ मेरा प्रभु ताप, (त्रिताप) नाशकर्ता भी है।

पूषा फलाद्यः बन्धुश्च भगवां मंगलमूलः।
प वर्गस्थ महादेवोऽपवर्ग प्रदायकः।।

भाषार्थ-

प वर्ग- जो पूषा (विश्वपोषक), कर्मफलदाता, सबका बन्धु मंगलमूल भगवान् है। प वर्ग स्थित वह महादेव अपवर्ग प्रदायक है।

परोपकारी के सुधी पाठकों के लिए आवश्यक सूचना

परोपकारी शुल्क भेजते समय नये या पुराने ग्राहक के उल्लेख के साथ-साथ ग्राहक संख्या अवश्य लिखें, अन्यथा शुल्क जमा करने में कठिनाई आती है। फलस्वरूप पाठकों के पास पत्रिका नहीं पहुँच पाती है। ऐसे ही अपना नाम हटवाते व जुड़वाते समय दूरभाष संख्या सहित अपना पूरा विवरण लिखकर भेजें। ई.एम.ओ. के द्वारा शुल्क भेजने वाले ग्राहक भी सन्देश के साथ अपनी ग्राहक संख्या सहित पूरा विवरण भेजें। **परोपकारी पत्रिका कार्यालय से निरन्तर भेजी जाती है, फिर भी जिन लोगों के पास पत्रिका का कोई अंक प्राप्त ना हुआ हो तो कृपया पत्र या दूरभाष द्वारा हमें सूचित करें, ताकि हम वह अंक पुनः भेज सकें, साथ ही अपने डाकघर में इसकी जाँच आदि भी करें।**

धनराशि भेजने हेतु सूचना

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित सभा है एवं उनके कार्यों को आगे बढ़ाने के लिय कृत-संकल्प है। सभा द्वारा ऋषि के स्वप्नानुरूप गुरुकुल, संन्यास एवं वानप्रस्थाश्रम, ध्यान शिविर, वैदिक साहित्य का प्रकाशन, देश में प्रचार, परोपकारी पत्रिका के माध्यम से जन-जागरण, भव्य अतिथिशाला, भोजनशाला आदि अनेक प्रकल्पों का संचालन हो रहा है। ये सभी कार्य आर्यजनों के सात्विक दान से ही होते हैं। अत: दानी महानुभावों से निवेदन है कि वेद, ईश्वर, दयानन्द के इस कार्य में अपना सहयोग अवश्य प्रदान करें।

चैक, ड्राफ्ट, धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा राशि भेजने वाले उन पर **'परोपकारिणी सभा'** अवश्य लिख दें। दानी महानुभाव ऑनलाइन भी राशि जमा करवा सकते हैं। भारतीय स्टेट बैंक में एक सहस्र तक की राशि जमा कराने वाले **२५ रु. बैंक सेवा शुल्क के रूप में अतिरिक्त** जमा करवाने की कृपा करें। कृपया, राशि निम्नांकित बैंकों में ऑनलाइन भिजवाकर, जमा कराई गई स्लिप के साथ उद्देश्य लिखकर सभा कार्यालय को सूचित करवाने का कष्ट करें।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

IFSC - SBIN0007959

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं, वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के बिना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४१

वैचारिक क्रान्ति के लिए सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

मन

प्रकाश चौधरी

''मन के हारे हार है मन के जीते जीत''

मन जीवात्मा का निकटतम साधन है। यह ही है जो व्यक्ति के बन्धन व मुक्ति का कारण है। यूँ तो यह देह (शरीर) ही जीवात्मा के प्रत्येक क्रियाकलाप का साधन है, परन्तु मुख्य रूप से मन विशेष साधन है जिसके अधीन सब इन्द्रियाँ कार्य करती हैं। किसी ने सत्य कहा है कि एक उत्तम विचित्र उर्वरा भूमि है जिसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म विचाररूपी बीज पड़ते ही क्षण भर में हजार गुणा विस्तृत हो जाता है। यह ऐसा चंचल और गतिशील है। एक मानसिक भूल से युधिष्ठिर जैसा महान् सम्राट् निम्न स्तर पर आ जाता है और सिकन्दर जैसा साधारण व्यक्ति उत्तम सूझ-बूझ से विश्वविजयी हो जाता है। मन की महत्ता, इसकी सोच एवं विचार पर निर्भर है।

अच्छे या बुरे कार्यों का मूल मन है जो मनुष्य को अच्छी या बुरी श्रेणी में लाकर खड़ा करता है। दु:ख-सुख का फल पाता है व्यक्ति। शतपथ ब्राह्मण कहता है मनुष्य जो मन से सोचता है वह वाणी से कहता है। जैसा वाणी से बोलता है वैसा ही हो जाता है, अर्थात् वैसा ही आचरण करता है। अच्छाई या बुराई का आरम्भ ही मन से होता है। सुधरने की प्रक्रिया भी मन की स्वीकृति पर निर्भर है। उपरान्त वाणी तथा आचरण में सुधार आ सकता है। आज जो समाज में दुराचार, शोषण, अन्याय आदि हो रहे हैं ये सब मन की सोच बिगड़ने के कारण हैं। जब तक मन पर अधिकार नहीं, मन अपनी मनमानी ही करेगा। आध्यात्मिक दृष्टि से संसार के सभी विषय चुम्बक हैं जो मनरूपी लोहे को अपने आकर्षण से खींचते रहते हैं। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि आकर्षक वस्तुएँ मन को लुभाती रहती हैं। इसलिए कहा कि शुद्ध पवित्र सोच के लिए मन पर नियन्त्रण आवश्यक है।

यदि व्यक्ति अपने मन पर नियन्त्रण कर ले तो इन्द्रियाँ उसके अधीन हो जाती हैं। व्यक्ति अपने प्रत्येक कार्य को सफल बनाने में समर्थ हो जाता है। वह एकाग्रचित्त होता है। हर कार्य को, चाहे देखने का हो अथवा सुनने का, उस पर उसका पूरा ध्यान होता है। एकाग्रचित्त व्यक्ति ही विश्वासी व्यक्ति होता है वह अपने कार्य में दक्ष होता है, दायित्ववान् होता है। मन पर नियन्त्रण करने से स्मृति दृढ़ होती है। एक कुशल दुकानदार को, अपने हर सामान पर जो उसकी दुकान में है, कहाँ-कहाँ रखा है, उसका मूल्य क्या है, सब उसके स्मृतिपटल पर अंकित हो जाता है। यह, बस उसके एकाग्रचित् होने से होता है। इसी प्रकार कोई श्रोता किसी के उपदेश को एकाग्र हो सुनता है तो उपदेश का प्रत्येक शब्द उसकी स्मृति में रहता है।

मन पर नियन्त्रण के कारण हर विषय का ज्ञान शीघ्र हो जाता है। एकाग्रता से स्मृति, स्मृति से निर्णय, निर्णय से व्यवहार, कार्यकुशलता, दक्षता आदि की प्राप्ति होती है। मन पर नियन्त्रण रखने वाला व्यक्ति अपने व्यक्तिगत, सामजिक एवं पारिवारिक समस्याओं को सुलझाने में सक्षम होता है, विचलित नहीं होता। प्रत्येक परिस्थिति में निर्द्वन्द्व रहता है। जैसे कर्म करने एवं कठोर परिश्रम के उपरान्त शरीर को विश्राम की आवश्यकता होती है। शरीर स्वस्थ रहता है। कार्य करने की क्षमता बढ़ती है। वैसे ही इन्द्रियों तथा मन को अपने विषयों से रोक दिया जावे तो विचार-शक्ति बढ़ती है। शुद्ध और पवित्र एवं उच्चस्तरीय सोच होती है। मन को एकाग्र कर ध्यान लगाया जाये तो मन तथा इन्द्रियाँ दोनों स्थिर होते हैं और सत्त्वगुण द्वारा जीवात्मा को विश्राम एवं शक्ति मिलती है। मन पर जितना अधिकार करने का अभ्यास होता है उतना आत्मबल; उत्साह एवं प्रसन्नता मिलती है और परमात्मा को जानने का सामर्थ्य प्राप्त होता है।

हमारा मन कभी भी खाली नहीं रहता, कुछ न कुछ, किसी न किसी विषय के ध्यान में रहता है, ज्ञान प्राप्त करेगा अथवा अच्छाई या बुराई का भोग करेगा आदि-आदि। योग दर्शन में पंतजलि कहते हैं किसी एक विषय में प्रतीति बनी रहती है पर यह विषय यथार्थ होना चाहिए। मन ही संस्कारों का आधार है। जीवात्मा इसी बहुमूल्य साधन द्वारा उत्तम कर्म बनाकर अपने मुख्य उद्देश्य 'प्रभु

प्राप्ति' करती है। हमारे प्रत्येक कर्म में मन का ही सहयोग होता है। शारीरिक तथा वाचनिक सभी कर्मों का उद्गम मन है।

ज्ञान की दृष्टि से मन की पाँच अवस्थाएँ हैं, प्रत्येक अवस्था में रहकर मन भिन्न-भिन्न परिणाम पाता है-

१. **क्षिप्तावस्था**- यह व्यक्ति की वह अवस्था है जब वह स्थिर नहीं होता, कामनाओं से प्रेरित होकर उचित व अनुचित दोनों प्रकार के कार्य करता है। धन-प्राप्ति हेतु वह कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। एक विद्यार्थी परिश्रम करता है उत्तीर्ण होने के लिए, परन्तु परीक्षा में वह नकल करने को भी तैयार हो जाता है। बुद्धिमान् होने पर भी मन में भिन्न-भिन्न विषयों को उठाता रहता है। यथार्थ विषय को काटता रहता है। उसकी बुद्धि केवल लौकिक विषयों पर चलती है। आध्यात्मिकता में उसकी रुचि नहीं होती। रजोगुण की प्रधानता होती है, तमोगुण का भी पुट रहता है। व्यक्ति पाप-पुण्य दोनों करता है।

२. **मूढ़ावस्था**- मन की इस अवस्था में व्यक्ति केवल तमोगुणी होता है। उसमें ज्ञान का अभाव होता है। मूर्खतापूर्ण जीवन बिताता है। अधर्म की ओर बढ़ता है। आलस्य, निद्रा, प्रमाद आदि से ग्रसित होता है। वह पुरुषार्थ करना नहीं चाहता, न ही उसे कुछ अच्छा सीखने की चाह होती है। आज जितना कमा लिया उतने में सन्तोष रखता है। जब तक आज का थोड़ा अर्जित धन समाप्त नहीं हो जाता, वह परिश्रम नहीं करना चाहता है। पशुओं जैसा जीवन बिता देता है। वह कुछ बन सकता है, परन्तु किसी बुद्धिमान् का साथ लेने से कतराता है, दूर भागता हुआ दु:ख पाता रहता है।

३. **विक्षिप्तावस्था**- महर्षि व्यास के अनुसार विक्षिप्तावस्था रजोगुण की प्रधानता का नाम है। रजोगुण के साथ-साथ सतोगुण का भी प्रभाव रहता है। इस अवस्था में व्यक्ति की रुचि ज्ञान, धर्म, वैराग्य तथा ऐश्वर्य की ओर होती है। आध्यात्मिकता अर्थात् चिन्तन, मनन, सेवा, परोपकार, भजन, सत्संग की ओर प्रवृत्त होता है। लौकिकता से ऊपर उठना चाहता है लेकिन द्वन्द्व में रहता है।

४. **एकाग्र अवस्था**- मन की यह अवस्था तभी होती है जब सत्त्व गुण की प्रधानता हो। इस अवस्था में चित्त हर कार्य में एकाग्र होता है। अधिकतर यह स्थिति योगियों की होती है। योगी वैरागी होकर बाह्य विषयों से ध्यान हटाकर केवल और केवल परमात्मा में एकाग्रचित्त होता है। इस अवस्था का नाम **सम्प्रज्ञात** भी है जो योग के अन्तर्गत आती है। योगी अपने अत:करण को पवित्र करने हेतु नि:स्वार्थ भाव से कर्म करता है। परोपकार करता है। स्वाध्याय, यम-नियम का पालन करता है, हर भौतिक तृष्णा से अपनी वृत्तियों को दूर रखता है। उसे बोध होने लगता है कि प्रकृति और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं। मैं आत्मा हूँ ऐसा सोचता है। ईश्वर-प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न करता है।

५. **निरुद्ध अवस्था**- जब चित्त प्राकृतिक अर्थात् सांसारिकता के प्रभाव से मुक्त होता है और अपने शुद्धस्वरूप में आता है तो यह निरुद्ध अवस्था है। इसे असम्प्रज्ञात समाधि या योग भी कहते हैं। ईश्वर के आनन्द में तल्लीन रहता है। हर प्रकार की अविद्या समाप्त होती है। योगी भयमुक्त और आनन्दित रहता है। यही अन्तिम चरण है जब व्यक्ति पुन: दु:ख, भय, संसार की ओर नहीं झुकता और अमरलोक को प्रस्थान करता है।

अत: मन की ये स्थितियाँ सत्त्व, तम, रज द्रव्यों पर आधारित हैं। एकाग्र तथा निरोध अवस्था सात्त्विक गुण (सत्त्व) की प्रधानता से होती है। यह स्थिति प्राय: योगियों की होती है। यह मन की श्रेष्ठ अवस्था है। रजोगुण तथा सतोगुण के युक्त होने से विक्षिप्त अवस्था होती है। वास्तव में इस अवस्था में सचेत होने की आवश्यकता होती है। क्षिप्त अवस्था रजोगुण तथा तमोगुण का परिणाम है। मूढ़ अवस्था तमोगुण की प्रधानता का परिणाम है। मन एवं आत्मा को पवित्र बनाने के लिए सदा सात्त्विक गुणों को बढ़ाना चाहिए। मन स्वयं तो जड़ है, आत्मा की प्रेरणा से प्रेरित होता है। मन जो भी कार्य करता है वह आत्मा की इच्छा से करता है। यदि हम ऐसा मान लें तो ही मन को अवांछित विषयों से रोका जा सकता है और उत्तम विषयों में लगाया जा सकता है। प्रभु की उपासना में स्थिर होकर बैठना, आत्म-निरीक्षण, सत्संग, स्वाध्याय आदि करने से सत्त्वगुण की प्रधानता संभव है। इस प्रकार चिन्तन-मनन करते हुए मन को वश में करके जीवन को सफल बनाया जा सकता है।

परमात्मा व मूर्तियों का स्वरूप

ओमप्रकाश गुप्ता

हम मूर्तियों को ईश्वर के तुल्य या उसका प्रतीक मानकर पूजा, अर्चना, आराधना आदि करते हैं। यह कितना उचित है? जबकि हम सब अच्छी तरह जानते, समझते हैं कि ये मूर्तियाँ जड़ हैं, फिर भी सच्चाई को स्वीकार नहीं कर, स्वयं सच्चाई से दूर अज्ञानता व अन्धविश्वास में डूबे जा रहे हैं। आखिर क्यों? सम्भवत: इसकी बुनियाद में हमारी पुरानी पारम्परिक रीति- रिवाजों में हमारा बंधे रहना है। हमें उन रिवाजों को तोड़ने में डर लगता है। यदि हम जड़ मूर्तियों को भगवान् मानकर इनमें आस्था, श्रद्धा नहीं रखेंगे और पूजा-पाठ निर्धारित पारम्परिक रीति से नहीं करेंगे तो हमारे साथ कोई अनहोनी घटना होने अथवा न होने का काल्पनिक डर हमारे मन में सदैव बना रहता है। इस मानसिकता, डर से हमको उबरना ही होगा।

हम सब अच्छी तरह से जानते, समझते हैं और मानते भी हैं कि हम सभी को उस परमशक्ति ईश्वर ने बनाया है, सम्पूर्ण सृष्टि की रचना उसी ने की है। इसके उपरान्त भी हम उस परमशक्तिमान् ईश्वर की मूर्ति बनाकर मन्दिरों में उसकी प्राण- प्रतिष्ठा करते हैं। हम शान्त व अन्तर्मुखी होकर स्वयं से कभी एक प्रश्न पूछें कि क्या हम उस सृष्टि के रचयिता परमपिता की मूर्ति बनाकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करने में सक्षम हैं? जो हम सबके जीवन का आधार है उसके जीवन की आधारशिला रखने की शक्ति क्या हम रखते हैं? क्या कोई पुत्र अपने पिता को कभी जन्म दे सकता है? कभी नहीं, तो परमपिता की प्राण-प्रतिष्ठा हम कैसे कर सकते हैं? कभी नहीं कर सकते, असम्भव है, परन्तु हम कर रहे हैं और अन्धकार, अन्धविश्वास व झूँठे दिखावे में स्वयं के साथ समाज को भी धकेल रहे हैं। हम जानते-समझते, अनजान व मूर्ख बन रहे हैं। आखिर क्यों?

हमको तो इसकी खबर तक नहीं है कि हम धर्म के नाम पर कितना अधर्म और पाप करते जा रहे हैं। अधर्मी, बलात्कारी, पाखण्डी, धूर्त, निकृष्ट, भांग-गांजा आदि का नशा करनेवाले पण्डे, पुजारियों, साधुओं को इस प्रकार के अनैतिक कृत्य व अत्याचार करने में सहयोग कर रहे हैं। हम उनके जाल में फँसकर अपने धन को बर्बाद व लुटा रहे हैं।

हमने हमारे आराध्य मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की मर्यादा, उनके आचरण, उनकी रीति-नीतियों को कभी भी जीवन में नहीं अपनाया। उनके जैसा भाई-प्रेम, साहस, त्याग को जीवन में कभी आने नहीं दिया। हमने योगेश्वर श्रीकृष्ण के गीता के ज्ञान को कभी समझा नहीं। हम मात्र रासलीला और राधा के प्रेम-प्रसंग तक ही सीमित रह गये। उनकी योग-क्रियाओं, निर्भयता, प्रत्येक परिस्थिति में स्वयं को श्रेष्ठ (आर्य पुरुष) बनाये रखने की कला, अपने कर्म को सदैव प्रधानता के पद पर रखना हमने कभी सीखा नहीं। हमने अपने पर विश्वास न कर ज्योतिष, भाग्यफल, जादू-टोना, टोटका आदि पर विश्वास किया। इस प्रकार हम वास्तविकता, सच्चाई से दूर रहे और वर्षों से दु:ख व कष्टों को भोग रहे हैं।

हमने असहाय, गरीब व अनाथों की कभी सुध नहीं ली। नारियों (अपनी पत्नियों, बहनों, पुत्रियों) को सदैव कम महत्त्व दिया है। ''नारी तो नरक का द्वार है'' इस कहावत को अधिकतर उचित मानते हैं। हम सोचें कि क्या यह सब समाज के हित के लिये सही है। हमको सच्चा व सही मार्ग अपनाना ही होगा, जो केवल और केवल मात्र वेद-मार्ग ही है।

हमें अपने आपको कर्मशील बनाकर, पुरुषार्थी होकर उससे होने वाले फल, वेदों के सच्चे ज्ञान को समझकर, आत्मसात करके अपने जीवन में उतारना होगा। अपने आपको व अपनी संस्कृति को जीवित रखने के लिये वेदों की ओर लौटना ही होगा। इसके लिये महर्षि दयानन्द के प्रकाशस्तम्भ ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' को समझना, उनकी विचारधारा को अपनाना ही पड़ेगा। उस महान् सर्वश्रेष्ठ, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान्, अमर, निराकार परमात्मा, चित्रकार, सृष्टि-निर्माता के दिग्दर्शन करने के लिये मन की आँखों को अर्थात् आध्यात्मिक-ज्ञान को जाग्रत करना होगा। इसी माध्यम से उस परमशक्तिशाली रचनाकार, चित्रकार को हम समझ व दृष्टिगोचर कर सकते हैं। जीवन में शान्ति व सुख प्राप्त करने का मात्र यही मार्ग है और अन्य मार्ग तो भटकाने व भ्रमित करने वाले ही सिद्ध होंगे।

आर्यों के लिये शुभ सूचना

'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर' छपने के लिये तैयार

कुछ समय पूर्व 'परोपकारी' में सूचना प्रकाशित हुई थी कि पं. लेखराम आर्य मुसाफ़िर के साहित्य 'कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर' को परोपकारिणी सभा प्रकाशित करने जा रही है। इस सूचना को पढ़कर आर्यजगत् में उत्साह का संचार होना स्वाभाविक ही था, जिसके परिणामस्वरूप इस ग्रन्थ को छापने के लिये कई साहित्यप्रेमियों ने सभा को सहयोग भी किया, परन्तु पंडित लेखराम जैसे नाम पर यह सहयोग पर्याप्त मालूम नहीं हुआ। पंडित लेखराम वह नाम है जिसके वैदिक-ज्ञान के सामने विरोधी काँपते थे। ऐसे सिद्धान्तमर्मज्ञ ने अपनी संचित ज्ञान-राशि को लेखबद्ध किया और इस लेखबद्ध ज्ञानराशि को यति शिरोमणि स्वामी श्रद्धानन्द जी ने एकत्रित किया और एक ग्रन्थ निर्मित हुआ, जिसका नाम था 'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर'। यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित हुआ। वर्त्तमान में यह ग्रन्थ दुर्लभ हो गया था। परोपकारिणी सभा ने इसे पुन: प्रकाशित करने का निर्णय लेकर पं. लेखराम को पुनर्जीवित कर दिया है। हमने लेखराम का गुणगान ही सुना है, उनके जीवन को ही पढ़ा है, पर वह इस उच्च पदवी को कैसे पा गये- इसकी सच्ची खबर तो उनके लिखे पन्ने ही बता सकते हैं। इन पन्नों को किताब रूप में छापने के लिये जैसा उत्साह, जैसी उमंग दिखनी चाहिये थी, उसमें अभी न्यूनता ही नज़र आती है।

अब यह ग्रन्थ छपने के लिये प्रेस में भेजा जा रहा है। अच्छे कार्यों का सदैव प्रोत्साहन होना चाहिये, इस दृष्टि से इस पुस्तक में **११०००/-रु.** का सहयोग करने वालों के नाम प्रकाशित किये जायेंगे। **एक लाख रु.** से अधिक का सहयोग करने वालों का चित्र सहित आभार व्यक्त किया जायेगा।

आइये, महर्षि दयानन्द के मिशन के लिये अपना जीवन देने वाले आर्यपथिक पं. लेखराम को केवल शब्दों से याद न करके उन्हें पुनर्जीवित करने में भरपूर उत्साह से सहयोग करें।

ओम्मुनि
मन्त्री, परोपकारिणी सभा

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं। चिकित्सालय का समय प्रात: ९ से ११ बजे तक है। रविवार का अवकाश होता है।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

आर्यजगत् के समाचार

१. शिविर सम्पन्न- आर्य वीरदल, उ.प्र. के अन्तर्गत मुरादाबाद में २० से २७ मई २०१८ तक आर्यवीर, वीरांगना चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन किया गया जिसमें ४०० आर्यवीर व १२६ वीरागंनाओं ने प्रशिक्षण प्राप्त किया।

२. प्रचार सम्पन्न- १२, १३, १४ मई २०१८ को ग्राम दुधवास जिला खण्डवा (मध्य प्रदेश) के त्रिदिवसीय प्रचार कार्यक्रम में नवीन आर्यसमाज की स्थापना हुई। आर्यसमाज मन्दिर निर्माणार्थ आधा एकड़ भूमि का दान भी मिला। स्वामी अमृतानन्द सरस्वती ने ध्यान का प्रशिक्षण दिया। आचार्य आनन्द पुरुषार्थी, डॉ. अखिलेश शर्मा, ब्र. सत्यवीर एवं ब्र. निरंजन ने व्याख्यान दिये।

३. शिविर सम्पन्न- आर्यवीर दल व जिला बॉक्सिंग संघ बूंदी, राजस्थान के संयुक्त तत्त्वावधान में हनुमान राष्ट्रीय व्यायामशाला देवपुरा में १५ दिन से चल रहे शिविर का १९ जून २०१८ को समापन हो गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि जिला कलेक्टर श्री महेशचन्द शर्मा तथा उद्योगपति श्री राधेश्याम झँवर विशिष्ट अतिथि थे। जिला बॉक्सिंग संघ अध्यक्ष डॉ. मोहन सोनी ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। शिविर के मुख्य संचालक श्री अभयदेव शर्मा ने कार्यक्रम का आरम्भ करते हुए सभी बच्चों से लाठी, योगासन, पिरामिड, वुशु, बॉक्सिंग आदि का प्रदर्शन कराया।

शोक सन्देश

४. दक्षिणी हरियाणा के सुदृढ़, आर्यसमाज देवनगर के समर्पित आर्य युवक श्री महेन्द्रसिंह जी के पिताजी-**श्री कृष्णलाल जी यादव** ८० वर्ष की आयु में आकस्मिक निधन हो गया। वह एकदम निरोग, स्वस्थ व कुशल थे। मृत्यु से कुछ घण्टे पूर्व आप कई घण्टे तक श्री अनिल आर्य जी से ग्राम की, आर्यसमाज की उन्नति व हित की लम्बी चर्चा करते रहे। उनके निधन से समाज ने एक अनुभवी, परोपकारी मार्गदर्शक खो दिया है। दिवंगत आत्मा को परोपकारिणी सभा परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

५. आर्यसमाज ग्रेटर कैलाश-२ दिल्ली के संरक्षक श्री प्रियव्रत आर्य की धर्मपत्नी **श्रीमती शकुन्तला व्रत** का ७७ वर्ष की आयु में दि. १८ अप्रैल २०१८ को आकस्मिक निधन हो गया। निधन से पूर्व जब प्रियव्रत आर्य उनसे चिकित्सालय में मिलने गए तो उनसे आर्यसमाज में होने वाले यज्ञ का समय पूछा और कहा कि आपको तो इस समय यज्ञ में होना चाहिए था, आप आर्यसमाज जाइये। आर्य विद्वानों के भोजन आदि की व्यवस्था वह बड़ी श्रद्धा से करती थीं। ऐसी पुण्यात्मा को ईश्वर अपनी व्यवस्था में उत्तम स्थान दें। दिवंगत आत्मा को परोपकारिणी सभा परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

पाठकों की प्रतिक्रिया

१. सम्पादक जी,

'परोपकारी' अजमेर/ महोदय मई प्रथम अंक में 'मैं आग्रही हूँ' के माध्यम से श्री तपेन्द्र कुमार ने प्रेरणास्पद, अनूठी, अनभिज्ञ जानकारियाँ दी। इसके लिए माननीय का बहुत आभार। श्री धर्मवीर जी के बाद भी आप सबने उनके कार्यों में कोई कमी नहीं आने दी, एतदर्थ आप सब भी बधाई व धन्यवाद के पात्र हैं। शुभकामना सहित।

- रामदयाल, आर्यसमाज हिरणमगरी, उदयपुर।

2. Dear All,

I received the book "Ved Path Ke Pathik" from Shrimati Jyotsna Ji wife of late Dr. Dharmaveer Ji of Paropkarini Sabha, Ajmer. It is a collection of tributes to him.

I regret that I did not contribute to it nor anybody from Mumbai has participated.

I must say this is a very educative, and inspiring book indeed. It details the life of a man totally dedicated to Vedas, Swami Dayanand and Vedic Principles. We all must read it. I am going to order few more copies for distribution to all arya Samaj in Mumbai. I recommend that all of us must read this book.. a historical and intimate account written from personal knowledge of hundreds of well-wishers all over India and abroad.

- Chandra Bhooshan Girotra, Mumbai

परोपकारिणी सभा के
तत्त्वावधान में आयोजित
आर्यवीरांगना व्यायाम
प्रशिक्षण एवं चरित्र निर्माण शिविर
(दिनांक ५-१२ जून २०१८)

आर जे/ए जे/80/2018-2020 तक प्रेषण : ३० जून, २०१८ आर.एन.आई. ३९५९/५९

ऋषि उद्यान में चल रहे सात-दिवसीय ग्रीष्मकालीन 'योग-साधना शिविर' में ध्यान का प्रशिक्षण लेते साधक।

प्रेषक:
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में